वृद्धि, स्थिति और क्षय; चार काल—बाल्य, यौवन, जरा और वार्द्धक्य; चार अन्तःकरण—मनः, बुद्धि, चित्त और अहंकार; चतुर्वर्ग—धर्म अर्थ,काम और मोक्ष, पंचभूत—क्षिति, अप्,तेज, मरुत् और व्योम; पंच तन्मात्रायें—रूप, रस, शब्द, स्पर्श और गन्ध; पंच ज्ञानेन्द्रिय—चक्षु, कर्ण, नासिका जिह्वा और त्वक्; पंच कर्मेन्द्रिय—वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ; पंच प्राण—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान; पंच कोश—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय, छः रिपु—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य, षट्चक्र—स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार; सप्तधातु—त्वक्, रक्त, मांस, स्नायु, अस्थि, मज्जा और शुक्र, या रजः; अष्ट योगांग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि; नव द्वार—दो चक्षु, दो नासा रन्ध्र, दो कर्ण रन्ध्र, मुख, मलद्वार और मूत्र द्वार, दशेन्द्रिय—पंच कर्मेन्द्रिय और पंच ज्ञानेन्द्रिय, दश प्राण—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय। एकादशेन्द्रिय—पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और मानसेन्द्रिय।

इसके उपरान्त यह ज्ञान भी मिलता है कि मानव-शरीर में अस्थि संख्या ३६०, ग्रन्थि, २१०, स्नायु ६००, पेशी ५०० (लेकिन स्त्रियों की ५२०), शिरा असंख्य (लेकिन प्रधान शिरा ७००), रोम केशादि ३२ लाख से ऊपर, भुक्त अन्न के परिपाक से उत्पन्न रस ५ अंजलि, रक्त ८ अंजलि, जलीय भाग १० अंजलि, पुरीष ७ अंजलि, श्लेष्मा ६ अंजलि, पित्त ५ अंजलि, मूत्र ४ अंजलि, वसा (मांस का सार) ३ अंजलि, मेदः (सूक्ष्मास्थियों में रक्तवर्ण पदार्थ) ७ अंजलि, मज्जा (स्थूलास्थियों में तैलवत् पदार्थ) १ अंजलि मस्तिष्क अर्धांजलि, रेतः अर्धांजलि हैं। अंजलि शब्द का अर्थ यहाँ अर्ध सेर है। १२ अंजलि रक्त से अर्धांजलि मात्र शुक्र उत्पन्न होता है। ये सब का सब ज्ञान नाभि-चक्र में संयम के प्रयोग करने से अति सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में मिलता है।

क्षुधा और तृष्णा पर जयलाभ*

पतञ्जलि ने कहा है कि जिह्वा-तन्तु के मूल स्थान में यानी गले गह्वर में कण्ठ में जो कूपाकार स्थान है जहाँ प्राण-वायु के संघर्ष होने से क्षुधा और तृष्णा का अनुभव होता है वहाँ संयम के प्रयोग करने से क्षुधा या तृष्णा कुछ भी नहीं रहती है। योगी लोग समाहित होकर सुदीर्घ काल

*कण्ठकूपे क्षुत्पिपासा-निवृत्तिः ॥ यो. ३-३०॥

तक रहते हैं। इस प्रक्रिया की सहायता से वे आहार और पानीय वर्जित होकर रह सकते हैं और शरीर भी नष्ट नहीं होता है। **मेरे अनुभव में भी यह है।**

शरीर और मन की स्थिरता❀

पतंजलि ने कहा कि कण्ठ-कूप के नीचे **वक्ष-प्रदेश** में अत्यन्त दृढ़ा कूर्म नाम की नाड़ी है। उसमें संयम के प्रयोग करने से शरीर और मन की स्थिरता आ जाती है। चित्त को कूर्म नाड़ी में प्रविष्ट रख कर योगी लोग सुदीर्घ काल तक शरीर और मन को स्थिर करते हैं और इसके अभ्यास हो जाने से शरीर और मन समाधि के अनुकूल बन जाते हैं।

सिद्ध पुरुषों के दर्शन लाभ★

पतंजलि ने कहा कि मूर्द्ध ज्योति में संयम का प्रयोग करने से सिद्ध पुरुषों का दर्शन मिलता है। मस्तक कपाल के ठीक मध्य स्थान में ब्रह्म-रन्ध्र नाम का अतिसूक्ष्म छिद्र है। उसका नाम सुषुम्ना पथ भी है। सुषुम्ना नाड़ी से हृदय की सात्विक ज्योति या स्वच्छ बुद्धि-तत्व का प्रकाश वहाँ जाकर जमा होता है। उसी जमी हुई तेजोमयी, प्रकाशमयी, निर्मला मूर्द्ध-ज्योति में संयम का प्रयोग करने से सिद्ध पुरुषों का दर्शन होता है। हमारे गुरु जी ने कहा था कि संयम-सिद्ध योगी लोग अदृश्यचर और अन्त-रिक्षवासी सिद्ध पुरुषों के दर्शन करते हैं और उनके साथ वार्तालाप भी करते हैं। हम इस तत्व को अनुभव में नहीं ला सके। दूसरी-दूसरी इन सब वर्णित विभूतियों के अन्दर बहुत विभूतियाँ हमारे अनुभव के अन्दर आई हैं। ज्ञान दृष्टि से, ऋषि-मुनियों के ग्रन्थों के साधनों से हम सभी के दर्शन करते हैं, चर्म चक्षु से नहीं।

प्रातिभ-ज्ञान से वस्तु-ज्ञान लाभ❀❀

प्रतिभा-प्रसूत ज्ञान का नाम प्रातिभ ज्ञान है। योगी लोग संयम के बिना ही प्रातिभ ज्ञान के द्वारा ही प्रकृति और प्राकृतिक वस्तुओं के ज्ञान का लाभ करते हैं। प्रातिभ ज्ञान पर संयम करके भी सब कुछ जान लेते हैं। किसी घटना की सूचना से ही उसके साथ सम्बन्धित घटनाओं के बारे में मन के अन्दर झट जिस ज्ञान का आविर्भाव होता है उसी का नाम प्रातिभ ज्ञान है। तथ्य-विषयक ज्ञान का नाम भी प्रातिभ है और पूर्व जन्मों से

❀कूर्म नाड्या स्थैर्यम् ॥३-३१॥
★मूर्द्ध ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम् ॥३-३२॥
❀❀प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥३-३३

संचित ज्ञान का नाम भी प्रातिभ है। शास्त्रों में प्रातिभ ज्ञान के "ऊह" और "तर्कणा" नाम भी हैं। प्रातिभ ज्ञान पर संयम करके योगी लोग दूसरे प्रकार के तारक ज्ञान* का लाभ करते हैं। जो ज्ञान संसार-तारक है उसी का नाम तारक ज्ञान है। जिस ज्ञान के द्वारा निस्तार मिलता है, जिससे संसार-समुद्र पार करना सम्भव होता है उसी का नाम तारक ज्ञान है। यह ज्ञान प्रसंख्यान नामक वैराग्य ज्ञान का अर्थात् प्रकृति-पुरुष के भेद-ज्ञान का पूर्व रूप है उसी का नाम तारक ज्ञान या प्रातिभ ज्ञान है। प्रातिभ ज्ञान दूसरे के उपदेश से नहीं होता है। उपदेश के विना ही जो ज्ञान है वह ही प्रातिभ ज्ञान है।

चित्तज्ञान लाभ★

पतंजलि ने कहा कि हृदय में संयम धारण करने से चित्त के बारे में ज्ञान का उदय होता है अर्थात् अपने चित्त के संस्कार और दूसरे के चित्तस्थ अभिप्राय समझ में आते है। चित्त के ज्ञान से इस जीवन का और पूर्व जीवनों का सम्यक् परिचय मिल जाता है।

आत्म-साक्षात्कार लाभ

बुद्धि और आत्मा सर्वथा भिन्न हैं। आत्मा बुद्धि नहीं है और बुद्धि भी आत्मा नहीं है। इन दोनों की भिन्नता का ज्ञान न होने के कारण सुख-दुःखादि भोगों को पुरुष यानी आत्मा अपना समझ लेता है। भोग दूसरे के हैं। पुरुष एक पदार्थ है और पुरुष का भोग दूसरा पदार्थ है। पतंजलि ने कहा कि इस भेद-भाव या भिन्नता के प्रति संयम का प्रयोग करने से आत्म-साक्षात्कार यानी आत्म-ज्ञान-लाभ होता है।

प्रकाशरूप सुखादि-स्वभाव बुद्धि नामक अन्तःकरण द्रव्य का दूसरा नाम सत्व है और उसके चेतयिता चैतन्य पदार्थ का नाम पुरुष है सत्त्व और पुरुष एक नहीं हैं, भिन्न हैं। लेकिन इन दोनों पदार्थों की भिन्नता मामूली ज्ञान से या बोध से मालूम नहीं होती है। इसलिए ही सुख-दुःखादि का भोग होता है। बुद्धि सत्त्व ही भिन्न-भिन्न आकारों में परिणत होता है।

---

*तारकं सर्वविषयम। यो. ३ पा

★हृदये चित्त, संवित् ।।यो. ३-३४।।

**सत्त्वपुरुषयोरत्यन्ता संकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थत्वात्, स्वार्थ-संयमात् पुरुषज्ञानम् ।।यो. ३-३५।।

पुरुष उसी में प्रतिबिम्बित होता है। इसलिये बुद्धि के भिन्न-भिन्न परिणाम भी पुरुषवत् प्रतीयमान होते हैं अर्थात् चैतन्य तुल्य या चैतन्याकार प्राप्त होते हैं। ऐसे ही चैतन्य-प्रतिबिम्बित बुद्धि वृत्ति भी चैतन्य-तुल्य या चैतन्याकार जानी जाती है।

इस तरह के अभेद या तुल्याकार प्राप्त होने का नाम भोग है। यह भोग बुद्धि का ही परिणाम है, बुद्धि का ही धर्म है। लेकिन पर अर्थात् पुरुष उसका निमित्त कारण है। इसलिए यह भोग पुरुषार्थ नहीं है। यह है परार्थ। इस भोग नामक पदार्थ-प्रत्यय के अतिरिक्त दूसरा एक स्वार्थ-प्रत्यय है। सत्व या बुद्धि-तत्व जब कर्त्तृभाव को छोड़ कर अर्थात् 'मैं, मेरा" आदि आकारों में परिणत न होकर केवल मात्र आत्म चैतन्य से व्याप्त रहता है, निर्मल निस्तरंग निर्विकार बुद्धि-सत्व में जब केवल मात्र चैतन्य का ही प्रतिबिम्ब विराजित रहता है तब उसको आत्मावलम्बन या स्वार्थ प्रत्यय कहा जा सकता है। योगी लोग उस आत्मावलम्बन में या तादृश स्वार्थ प्रत्यय में संयम का प्रयोग करके पुरुष-विषयक ज्ञान या आत्म-साक्षात्कार या आत्मदर्शन लाभ करते हैं।

भोग पुरुष का बन्धन है। भोग से पुरुष की आत्म-स्मृति नष्ट हो जाती है। पुरुष अपनी स्वतन्त्रता को भूल जाता है। पुरुष तब अपने को प्रकृति से अभिन्न समझ लेता है। पुरुष तब समझ लेता है "मैं शरीर हूं मैं इन्द्रिय हूं, मैं मन हूं, मैं बुद्धि हूं" आदि-आदि। पुरुष जब-जब भोग में आसक्त रहता है तब तब स्वात्म बोध नहीं रहता है। भोग की आसक्ति छोड़ने से, भोगों से विरत होने से पुरुष को प्रकृति से भिन्नता का प्रत्यय आ जाता है। पुरुष तब अपनी भूल को समझ सकते हैं और इस शुद्ध भाव पर संयम के प्रयोग करके आत्म-स्वरूप की उपलब्धि करते हैं! पुरुष तब दृष्ट स्वरूप होते हैं। प्रकृति तब दृश्य मात्र है और पुरुष साक्षि-मात्र है। द्रष्टा और दृश्य का अभिन्न प्रत्यय ही संसार, भोग या बन्धन है और भिन्न प्रत्यय ही मुक्ति, मोक्ष या कैवल्य है।

बुद्धि के अन्दर तीन गुण हैं—सत्व, रजः और तमः। जब रजः गुण की चंचलता को और तमः गुण के मोहावरण को अभिभूत करके सत्व गुण अत्यन्त प्रकाशशील होता है तब इसका नाम विवेक प्रत्यय है। यह बुद्धि का चरम सात्विक परिणाम है। विवेक प्रत्यय आत्मदर्शन का सहायक है। आत्मदर्शन से ही मुक्ति होती है। मुक्ति ही मानव-देहधारी आत्मा का चरम लक्ष्य है।

दिव्य ज्ञान लाभ❀

पतंजलि ने कहा कि उस आत्म-दर्शन से पहले विविध सिद्धियाँ उपस्थित होती हैं। प्रथमतः प्रातिभ-ज्ञान का उदय होता है। प्रातिभ-ज्ञान के बारे में पहले भी कहा गया है। प्रातिभ-ज्ञान के द्वारा सूक्ष्म, व्यवहित, विप्रकृष्ट (अतिदूरस्थ) और भूत भविष्यत् वर्तमान—सब कुछ जाना जाता है। इसके बाद अद्भुत श्रवण-शक्ति का जन्म होता है। इसके प्रभाव से योगी लोग दिव्य शब्द को सुन सकते हैं। स्पर्श-ज्ञान का नाम वेदना है। योगियों का यह वेदना-ज्ञान इतना अधिक और उत्कृष्ट होता है कि ये लोग दिव्य-स्पर्श भी ग्रहण कर सकते हैं। चाक्षुष-ज्ञान का नाम आदर्श या दर्शन है। यह दर्शन-शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि इच्छा करने से ही योगी लोग इससे दिव्य रूप दर्शन कर सकते हैं। रसनाज्ञान का नाम स्वाद या आस्वादन है। यह इतना प्रबल हो जाता है कि योगी लोग इसके द्वारा दिव्य रस-समूह का आस्वादन ले सकते हैं। गन्ध-ज्ञान का नाम वार्ता और संवित्ति है। यह इतनी बढ़ जाती है कि योगी लोग दिव्य गन्धों का अनुभव कर सकते हैं।

बुद्धि से आत्मा भिन्न है यह भिन्नता का ज्ञान आता है। पहले इन्द्रियों से केवल स्थूल विषयों का ज्ञान होता था। अब इन्द्रियगण के मलिनता-हीन होने से सूक्ष्म-ज्ञान का आविर्भाव होता है। जब तक मन के अन्दर हिंसा-द्वेषादि अपवित्र मलिन भाव रहेंगे तब तक बुद्धि की विचार-शक्ति और मन की चिन्तन-शक्ति विशुद्ध नहीं होगी। बुद्धि मलिन होने से (ह.ले.२२०) उसके अधीन मन और दूसरे इन्द्रियादि भी (मलिन) रहते हैं। यमनियमादि योगांगों के पालन से बुद्धि, मन और इन्द्रियादि निर्मल और शुद्ध होते हैं। तब इनके अन्दर प्रकृष्ट सूक्ष्म ज्ञान और सूक्ष्म-दर्शनादि शक्तियों का जन्म होता है।

समाधि के विघ्न और उपसर्ग★

इन सब सूक्ष्म दर्शनों का नाम सिद्धि है। व्युत्थान के समय अर्थात् भोगकाल में यह सब सिद्धियाँ हैं लेकिन ये सब समाधि के परमशत्रु हैं❀❀

❀ ततः प्रातिभ श्रावण वेदना दर्शास्वादवार्ता जायन्ते ।।यो. ३-३६।।

★ ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ।। यो. ३-३७।।

❀❀प्रातिभ आदि सिद्धियों को व्यास भाष्य में विघ्न और उपसर्ग माना है। धर्म मेघ वाले योगी के लिए सब ही सिद्धियाँ उपसर्ग हैं ।।३-५२

नियमानुसार साधना करने से हर एक साधक कुछ न कुछ सिद्धिलाभ करते हैं। अधम साधक इस प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करके अपने को कृतार्थ समझ लेते हैं और केवल सिद्धि-भोग में ही उन्मत्त हो जाते हैं। वे लोग कैवल्य को प्राप्त नहीं होते हैं। लेकिन इन सब सिद्धियों को अति तुच्छ समझ कर जो साधक इनके प्रति ध्यान न देकर साधना और समाधि के प्रति ही अग्रसर होते हैं वे साधक ही कैवल्य, मुक्ति या मोक्ष को प्राप्त होते हैं। क्योंकि स्थूल विषय जैसे बन्धन हैं। सूक्ष्म विषय भी वैसे ही बन्धन हैं। जब समाधि का उत्कर्ष प्राप्त होता है। तब ये सब सिद्धियाँ परम विघ्न और उपसर्ग भासती हैं। ये सब उपस्थित होने से मोक्ष-दायक समाधि दृढ़ नहीं रहती है। ये सब सिद्धियाँ समाधि के परमशत्रु हैं। असमाधि के समय ये सब सिद्धियाँ हैं लेकिन समाधि के समय ये सब उपद्रव उपसर्ग और विघ्न हैं। कैवल्य-लाभेच्छु योगियों को सब सिद्धियों से सावधान रहना चाहिये।

पर-शरीर में प्रवेश*

पतंजलि का कहना है कि जिस कारण से चित्त एकमात्र इस शरीर में ही आबद्ध है इस कारण को हटा देने से अर्थात् चित्त के बन्धन को ढीला कर देने से और चित्त के प्रचार-स्थान (शरीरस्थ नाड़ी समूह) जानने से चित्त को योगी दूसरे के शरीर में प्रविष्ट कर सकता है। सर्वत्र गमन करना उसका स्वभाव है। कर्म अर्थात् धर्माधर्म के कारण से ही ऐसा सर्वगामी चित्त केवलमात्र एक ही निर्दिष्ट शरीर में बंधा हुआ है। सर्वगामी चित्त केवल मात्र अपने उपार्जित कर्मों में फँस कर ही असर्वगामी बन गया है। संयम या समाधि के द्वारा चित्त-बंधन धर्माधर्मों को अगर शिथिल कर दिया जाय तो चित्त अपने स्वभाव सर्वगामित्व की स्वाधीन शक्ति को प्राप्त होता है।

इसके साथ चित्त के संचरणमार्ग अर्थात् गतिविधि के पथ को अच्छी तरह जानना चाहिए। चित्त और प्राण कब कौन से रास्ते अर्थात् कौन-कौन सी नाड़ियों से किस प्रकार संचरण करता है किसी योगवित् से अच्छी तरह जाननी चाहिए। यदि संचरणमार्ग जाना हुआ रहे तो इसकी निश्चित रूप से इच्छानुसार स्थानों में प्रेरित किया जा सकता है।

---

* बन्ध-करण शैथिल्यात् प्रचार संवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥ यो. ३-३८ ॥

योगी लोग सब से पहले संयम के प्रयोग से चित्त के बंधन को शिथिल कर देते हैं। चित्त, मन और प्राणों के संचरण के पथ नाड़ी समूह को संयम के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से जान कर योगी लोग उस नाड़ी-पथ से बाहर निकाल कर इच्छानुसार दूसरे शरीर में प्रवेश कर के उसमें अपने शरीर के ऐसे सुख दुःखादि को अनुभव करते हैं। शरीर के सब ही इन्द्रिय चित्त के अनुगामी हैं। चित्त दूसरे शरीर में प्रवेश करने से उसके साथ चित्त के अनुगामी सब इन्द्रिय भी उस शरीर में प्रविष्ट होते हैं। योगी अपने शरीर को छोड़ कर दूसरे के शरीर में अपने मन, प्राण और इन्द्रियों को संस्थापित करके इच्छानुसार आहार-विहारादि कर सकते है।

इच्छा-मृत्यु और शरीर की लघुता❀

पतंजलि का कहना है कि प्राणों के उदान कार्य को अपने अधीन करने से जल, कर्दम, कण्टकादि के ऊपर से यातायात भी सुगम होता है और **मृत्यु भी इच्छानुसार** होती हैं।

शरीर के इन्द्रिय गण दो प्रकारों के कार्य करते हैं—बाहर के कार्य और भीतर के कार्य। रूप-रसादि का ग्रहण बाहर के कार्य हैं और जीवन को अक्षत रखना भीतर के कार्य हैं। हरएक इन्द्रिय अपने विशेष कार्य करती है और सब इन्द्रियाँ मिलकर एक साधारण कार्य भी करती हैं। सब इन्द्रियाँ सम्मिलित रूप से आभ्यन्तरीण कार्य-विशेष जीवन धारण नामक विशिष्ट कार्य का निर्वाह कर रही हैं। जीवनकार्य इन्द्रिय-समष्टि की क्रियासमष्टि मात्र ही है। पृथक्-पृथक् इन्द्रिय के द्वारा जो पृथक्-पृथक कार्य होते हैं उन सब के पृथक्-पृथक् नाम भी हैं।

इसमें जिस क्रिया के द्वारा हृदय से मुख-नासिका तक श्वास-प्रश्वास वायु की क्रिया साधित होती है, उसी क्रिया का नाम "प्राण" है। जिस क्रिया के द्वारा परिचालक वायु नाभि से पादांगुलितक रस रक्तादि को वहन करके परिव्याप्त करता है उसी क्रिया का नाम "अपान" है। जो क्रिया नाभि-देश को वेष्टन करके भुक्त वस्तुओं के परिपाक मलमूत्रादि के पृथक्करण और रक्तादि का उत्पादन करके यथास्थान ले जाती है उसी क्रिया का नाम "समान" है। जो क्रिया ग्रीवा से मस्तक-चूड़ा तक सब दैहिक उपादानों को ऊपर की ओर धारण करके स्थिर है उसी क्रिया

❀ उदानजयात् जलपंककण्टकादिष्वसंगः उत्क्रान्तिश्च ॥ यो. ३, ३९ ॥

का नाम "उदान" है। जो क्रिया सर्व शरीर की शिराओं में संचरण करके बल-रक्षा करती है उसी क्रिया का नाम "व्यान" है।

इन सब इन्द्रिय-क्रियाओं के अन्दर यानी प्राण-पंचक के अन्दर जिस क्रिया का नाम "उदान" है उस पर संयम का प्रयोग करके उसको अपने अधीन करने से दूसरी क्रियाओं के अवरोध हेतु उद्गत-स्वभाव "उदान" अत्यन्त प्रबल होता है। और सम्पूर्ण शरीर अत्यन्त हलका हो जाता है। इसलिये योगी "उदान" पर संयम-धारण करके जल, पंक, कंटक किसी में भी नहीं धसते। इस "उदान" जय नामक क्रिया को योगी आसन पर बैठे हुये अभ्यास करते हैं और शरीर हलका होने के कारण आसन से ऊपर शून्य में सूर्यवत् उठ जाते हैं और कभी-कभी बैठे हुए शून्य में घूमते हैं।

पृथिवी हमारे शरीर को सर्वदा नीचे की ओर आकर्षण करती है। जिस क्रिया की सहायता से चलने के समय हम लोग शरीर को उठा सकते हैं वह ही "उदान" है। "उदान" से ही हम लोग पृथिवी से पैर को ऊपर उठा सकते हैं। "उदान" से शरीर अत्यन्त लघु होता है। योगी जल के ऊपर चल सकते हैं और कंटकों के ऊपर बैठ और शयन भी कर सकते हैं।

"उदान" की सहायता से मृत्यु के समय अपनी इच्छा से प्राण को शरीर से निकाल सकते हैं। मृत्यु के कारण योगी को शारीरिक या मानसिक किसी तरह का कष्ट नहीं होता। आनन्द के साथ देह को विसर्जन कर सकते हैं। ये सबके सब "उदान" पर संयम के प्रयोग करने से सम्भव होता है।

तेजोमय शरीर-लाभ❀

पतंजलि ने कहा है कि "समान" वायु पर संयम के प्रयोग करने से तेजोमय शरीरलाभ होता है। हम लोग जो कुछ भोजन करते हैं जठराग्नि उसको जीर्ण या परिपक्व कर देता है और समान-वायु उस परिपक्व या जीर्ण अन्नरस में समानता भी लाता है। शरीर में जहाँ जैसा आवश्यक है वह वहाँ ऐसे ही शरीर यन्त्र का परिपोषण करता है। प्रयोजन के अनुसार यह समान-वायु जठराग्नि को सर्व शरीर में भेज कर शरीर में उष्णता की सृष्टि करता है। इसलिये ही इसका नाम "समान" वायु है।

❀ समान जयाज्ज्वलनम्॥ यो. ३। ४०॥

इस समान वायु पर संयम का प्रयोग करने से अग्नि योगी के अपने वशमें आ सकता है। योगी लोग तब इच्छानुसार शरीर को उज्ज्वल या तेजोमय कर सकता है और प्रयोजन आने पर अपने देहों को उस योगाग्नि से भस्मीभूत भी कर सकता है।

कभी-कभी देखा जाता है कि मृत्तिका से एक तरह की उष्मा निकलती है। ठीक उसी तरह शरीर में भी ऐसी उष्मा विद्यमान है। वह मन और इन्द्रियों का क्रिया-प्रवाह या बहिःस्फुरण है। समान वायु पर जयलाभ होने से अर्थात् समान वायु पर संयम के प्रयोग करने से उस उष्मा का स्फुरण वृद्धि को प्राप्त होता है और परिशुद्धि होती है। साधारण मनुष्य उस योगी को तेजस्वी या अग्निमय रूप में अनुभव करते हैं।

दिव्य श्रोत्र लाभ❀

पतंजलि ने कहा कि श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध पर संयम धारण करने से दिव्य श्रोत्र का लाभ होता है। यह उपलक्षण से बोला गया है। इसी रूप से दूसरे-दूसरे इन्द्रियों में भी दिव्य गुण आ सकते हैं। शब्द-तन्मात्र से आकाश उत्पन्न हुआ है। शब्द-तन्मात्र के सात्त्विक अंश★ से ज्ञानेन्द्रिय श्रोत्र, राजसिक अंश से कर्मेन्द्रिय वाक् और तामसिक अंश से प्राण उत्पन्न हुए हैं।

इसी प्रकार स्पर्श-तन्मात्र से उत्पन्न हुआ वायु और उस स्पर्श तन्मात्र के सात्त्विक अंश से ज्ञानेन्द्रिय त्वक्, राजसिक अंश से कर्मेन्द्रिय पाणि और तामसिक अंश से "उदान" उत्पन्न हुये हैं।

इसी प्रकार रूप-तन्मात्र से तेज वा अग्नि उत्पन्न हुआ है। उस रूप तन्मात्र के सात्त्विक अंश से ज्ञानेन्द्रिय चक्षु, राजसिक अंश से कर्मेन्द्रिय पाद और तामसिक अंश से व्यान उत्पन्न हुए हैं।

इसी प्रकार रसतन्मात्र से अप् उत्पन्न हुआ है। उस रस तन्मात्र के सात्त्विक अंश से ज्ञानेन्द्रिय रसना (जिह्वा) राजसिक अंश से कर्मेन्द्रिय पायु और तामसिक अंश से अपान उत्पन्न हुए हैं।

इसी प्रकार गन्ध-तन्मात्र से पृथिवी उत्पन्न हुई है। उस गन्ध तन्मत्र के सात्त्विक अंश से ज्ञानेन्द्रिय नासिका, राजसिक अंश से कर्मेन्द्रिय उपस्थ और तामसिक अंश से समान उत्पन्न हुए हैं।

❀ श्रोत्राकाशयोः सम्बन्ध-संयमात् दिव्यं श्रोत्रम् ।।यो. ३-४१.

★ अभिनव योगज साक्षात्कारः

इससे हम लोग समझ सकते हैं कि पंच तन्मात्र से ही पाँच भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच प्राणों की उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार पाँच तन्मात्र से पाँच भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच प्राणों के अन्दर परस्पर अति निकट सम्बन्ध है।

जितने विभिन्न जीव हैं सभी के श्रोत्रेन्द्रियों के साथ आकाश का संयोग है, स्पर्शेन्द्रियों के साथ वायु का, चक्षुरिन्द्रियों के साथ अग्नि का, रसनेन्द्रियों के साथ जल का और नासिकेन्द्रियों के साथ क्षिति का संयोग है। श्रोत्रेन्द्रिय बहुत हैं। लेकिन आकाश एक है। इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय बहुत हैं लेकिन वायु एक है, चक्षुरिन्द्रिय बहुत हैं लेकिन अग्नि एक है, रसनेन्द्रिय बहुत हैं लेकिन जल एक है और नासिकेन्द्रिय बहुत हैं लेकिन क्षिति एक है।

पाँच भूतों के साथ इन्द्रियों का आधार आधेय सम्बन्ध हैं। योगी लोग इस तत्त्व को जान कर इन सब इन्द्रियों पर संयम का प्रयोग करके दिव्य अर्थात् अलौकिक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ग्रहण करते हैं। इन सब इन्द्रियों के स्थूल और सूक्ष्म विषयों को ग्रहण करने की उन में शक्ति हैं। राग-द्वेषादि के द्वारा इन्द्रियगण मलिन और असंयत रहता है। इस स्थिति में सूक्ष्म शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ज्ञान आता नहीं। इन्द्रिय और पंचभूतों के सम्बन्ध पर संयम धारण करके योगी दिव्य-शक्ति लाभ करते हैं। जैसे चुम्बक लौहका संबंध है। चुम्बक लोहे का आकर्षण करता हैं ऐसे ही (२२१ ह.ले.) विषय इन्द्रियों का आकर्षण करता है। स्थूल और सूक्ष्म दोनों विषयों को ग्रहण करने की शक्ति इन्द्रियों की है। साधारण मनुष्य स्थूल विषयों का ग्रहण कर सकते हैं। योगीसूक्ष्म विषयों का भी ग्रहण कर सकते हैं।

दिव्य या अलौकिक शक्ति❀

योगी शब्द-आकाश, श्रोत्र, स्पर्श-वायु-त्वक् रूप-अग्नि-चक्षु रस-जल-जिह्वा और गन्ध-क्षिति-नासिका—इनके परस्पर सम्बन्धों पर स्थिर चित्त से धारणा, ध्यान, समाधि अर्थात् संयम का प्रयोग करके दूरवर्ती और सूक्ष्म विषयों का ग्रहण कर सकते हैं।★ये लोग दूरवर्ती, अन्तराल के और गुप्त स्थानों के दृश्य देख सकते हैं, बातचीत सुन सकते हैं, स्पर्श का अनुभव कर सकते हैं, गन्ध ग्रहण कर सकते हैं और खाद्य वस्तु का आस्वादन कर

❀ ततः प्रातिभश्रावण वेदना स्वादवार्त्ता जायन्ते ।। यो. ३-३७

★ प्रकृत्यालोकन्यासात् सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्टज्ञानम् यो.३-२५

सकते हैं। इसी शक्ति का नाम अतीन्द्रिय शक्ति, और दिव्य शक्ति या अलौकिक शक्ति भी है।

आकाश भ्रमण❀

पतंजलि ने लिखा है कि काया और आकाश में जो सम्बन्ध है उस के प्रति संयम का प्रयोग करने से योगी रुई जैसा हलका बन सकता है और ऐसा अल्प भार होने के कारण वह आकाश में यातायात कर सकता हैं। जहाँ शरीर है वहाँ ही आकाश है। आकाश इस भौतिक देह को रहने का अवकाश या स्थान दे रहा है। शरीर व्याप्य और आकाश व्यापक है। आकाश इस देह को अपने सब स्थानों में ही आश्रय दे सकता है, आकाश से वायु, अग्नि, जल और क्षिति की उत्पत्ति हुई है। काया के साथ इन सब ही का क्रमानुसार सम्बन्ध है। योगी लोग इस प्रकार के सम्बन्ध के प्रति संयम का प्रयोग करते हैं, क्रमशः वह सम्बन्ध उनका इच्छाधीन हो जाता है अर्थात् उस सम्बन्ध पर योगी का जय हो जाता है। काया को तब ये लोग रुई जैसी लघु भावना से अनुध्यान करते हैं और रुई से भी लघु वस्तु का ध्यान करने लगते हैं। तब संयम-बल से योगी का देह अत्यन्त लघु बन जाता है। तब ये लोग क्लेश के विना ही आकाश में गमनागमन भ्रमणादि कर सकते हैं। यह आकाश-गति अति अल्पकाल के अन्दर ही सिद्ध नहीं होती। योगी धीरे-धीरे क्रमशः सीखते हैं। पहले ये लोग जल के ऊपर भ्रमण करना सीखते हैं, फिर मकड़ी के धागे के अवलम्बन से, फिर सूर्य रश्मि के अवलम्बन से अति ऊपर आकाश में संचरण और विचरण करना सीख लेते हैं।

बहुज्ञता सिद्धि×

पतंजलि मुनि ने कहा है कि बाह्य वस्तु में अकल्पिता मनोवृत्ति रूप महाविदेहा में संयम के प्रयोग करने से प्रकाश का आवरण क्षय को प्राप्त होता है।

वृत्ति दो प्रकार की हैं—कल्पिता और अकल्पिता। योगी देह के अन्दर रहता हुआ बाहर के किसी विषय में जब संयम करता है तब उस

❀ कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमात् लघु तूल-समापत्तेश्च आकाश-गमनम्। यो. ३-४२॥

×बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः॥यो. ३-४३॥

का नाम कल्पिता वृत्ति है "मैं देह नहीं हूं, मैं आकाश हूं।" इस प्रकार आकाश-भावना सर्वोत्तम कल्पिता वृत्ति का क्रमशः अभ्यास करने से चित्त देह में नहीं रहता है। चित्त तब आकाश में ही रहता है और आकाशमय हो जाता है। यह ही अकल्पिता वृति है। योगी लोग कल्पिता वृत्ति को 'विदेहा धारणा" बोलते हैं और अकल्पिता वृत्ति को "महाविदेहा धारणा" बोलते हैं। यह महाविदेहा धारणा सिद्ध हो जाने से चित्त के प्रकाश के आवरण का क्षय होता है। रजः और तमो गुण और उन दोनों गुणों के कार्यों के सब आवरणों से चित्त की प्रकाशशक्ति को आवृत कर रखा था, वह आवरण नष्ट हो जाता है। सब विषयों को प्रकाशित करना चित्त का स्वभाव है। "महाविदेहा धारणा" से चित्त का आवरण नष्ट हो जाता है। चित्त तब विश्व संसार को प्रकाशित कर सकता है। योगी तब बहुज्ञ बन जाते हैं।

शरीर में योगी का 'अहं—मैं' ज्ञान नहीं है। लेकिन चित्त बाहर के विषयों में निमग्न है। चित्त की इस अवस्था का नाम ही "महाविदेहा" है। चित्त की इस स्थिति पर संयम का प्रयोग करने से क्रमशः प्रकाश का आवरण अर्थात् स्वच्छ और व्यापक ज्ञान-शक्ति का प्रतिबन्धक आवरण क्षय को प्राप्त होता है।

साधक जब ध्यान-धारणा का अभ्यास करते हैं तब वे दृढ़तर संकल्प को धारण करके इस धारणा या कल्पना को ले लेते हैं "देह के प्रति जो मेरा यह अहं—ज्ञान है, वह नष्ट हो जाय और मेरा चित्त बाहर की वस्तु में ही विराजित रहे।" बार-बार वे इस कल्पना या चिन्ता को करते हैं। वह चिन्ता या कल्पना प्रबल होने से चित्त बाहर की वस्तु में ही प्रतिष्ठित हो जाता है। इसी का नाम "कल्पित विदेहा" है। क्रमशः जब देह के प्रति अहं वृत्ति का अभाव होता है तब चित्त स्वतः ध्येय वस्तु में ही प्रतिष्ठित होता है। इसी प्रकार के चित्त का नाम 'अकल्पिता महा-विदेह" है। इस अकल्पिता महाविदेह नाम के मनोभाव या धारणा प संयम के प्रयोग करने से सर्व प्रकाशक चित्त का आवरण या आच्छादन जिस के रहने से चित्त अल्पज्ञ होके रहा यानी सब कुछ प्रकाशित नहीं कर सका, वह आवरण दूर हो जाता है। योगी तब सब या बहुत कुछ जान सकते हैं।

भूत-जय❀

पतंजलि ने कहा कि क्षिति, अप्, तेज, मरुत् और व्योम—इन पाँच भूतों की स्थूल, सूक्ष्म, स्वरूप, अन्वय और अर्थवत्त्व—ये पंचविध रूप या अवस्था विशेष हैं। इनके प्रति संयम के प्रयोग से भूतजय होता है अर्थात् पंच महाभूत वशीभूत होते हैं।

प्रथम स्थूलावस्था—पंच भूतों की वर्तमान या परिदृश्यमान अवस्था का नाम स्थूलावस्था है। आकाश का शब्द, वायु के शब्द और स्पर्श, अग्नि के शब्द स्पर्श और रूप, जल के शब्द, स्पर्श, रूप और रस; और क्षिति के शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये सब आकार और गुणयुक्त अवस्थाएँ पंचभूतों के स्थूल रूप हैं।

द्वितीय स्वरूपावस्था—क्षिति कठिन और कर्कश है, जल स्निग्ध, तरल और शीतल है, तेज दहनशील है, वायु प्रवहमान और शोषणकारी है और आकाश स्थान-दायक है। ये सब पंचभूतों की स्वरूपावस्थायें हैं।

तृतीय सूक्ष्मावस्था—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये तन्मात्रायें या परमाणु ही पंचभूतों की सूक्ष्मावस्थायें हैं।

चतुर्थ अन्वयित्वावस्था—पंचभूत ही सत्त्व, रजः और तमोगुणों से परिव्याप्त हैं अर्थात् प्रकाश, प्रवृति, स्थिति इन तीनों धर्मों से युक्त हैं। यह पंचभूतों की अन्वय अवस्था है।

पंचम अर्थवत्त्वावस्था—भोग या अपवर्ग प्रदान के सामर्थ्य से युक्त पंचभूतों ही हैं। यह इनकी अर्थवत्त्वावस्था है।

भूतों की इन पंच अवस्थाओं के क्रमानुसार स्थूल स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वयित्व और अर्थतत्त्वों के प्रति संयमके प्रयोग करने से पंचभूतों पर जय-लाभ होता है। पंचभूत योगी के अपने इच्छानुगामी अर्थात् आज्ञाकारी बन जाते हैं और वशीभूत होते हैं। और पंचभूतों के सत्व, रजः और तमोगुण क्रमानुसार सुख, दुःख, मोह के कारण नहीं बनते हैं।

अष्ट ऐश्वर्य, काय-सम्पत् काय-धर्मों की अनभिघात-सिद्धियाँ★

पतंजलि ने कहा कि भूत जय होने से अणिमादि अष्ट महासिद्धि, कायसम्पत् और कायिक धर्मों का अनभिघात अर्थात् अविनाश होता है।

❀ स्थूल-स्वरूप-सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्व संयमाद् भूतजयः ॥यो. ३-४४॥

★ ततोऽणिमादि प्रादुर्भावः कायसंपत् तद्धर्मानभिघातश्च ॥यो. ३-४५॥

अष्ट-ऐश्वर्य—१. अणिमा, २. लघिमा, ३. महिमा (गरिमा), ४. प्राप्ति, ५. प्राकाम्य, ६. वशित्व,७. ईशित्व और ८. यत कायावसायित्व ईश्वर में स्वत: सिद्ध अष्ट महाशक्तियाँ हैं। ये गुण या महाशक्ति साधना-बल से योगी में भी प्रविष्ट होती हैं। इसलिये इन शक्तियों का नाम ऐश्वर्य है। भूत-जयी होने से उन ऐश्वर्यों की उत्पत्ति होती है। इनका दूसरा नाम है अष्ट महासिद्धियाँ। भूत-जय से ये सब महागुण योगियों के अन्दर आ जाते हैं।

पहले प्रकृति के पंचविध रूप या आवस्थाओं के सम्बन्ध में ये सिद्धियाँ वर्णन की गई है। यदि प्रकृति के स्थूल रूप में संयम का प्रयोग किया जाय तो प्रथम चार सिद्धियाँ—अर्थात् अणिमासिद्धि, लघिमासिद्धि, महिमा (गरिमा) सिद्धि और प्राप्ति सिद्धि आयत्व में लायी जा सकती है।

यदि प्रकृति की स्वरूप अवस्था में संयम का प्रयोग किया जाय तो प्राकाम्य नाम की महासिद्धि आयत्व में आ जाती है। यदि प्रकृति की सूक्ष्मावस्था में संयम का प्रयोग किया जाय तो वशित्व नाम की महासिद्धि आयत्व में आ जाती है। यदि प्रकृति की अन्वयावस्था में संयम का प्रयोग किया जाय तो ईशित्व नाम की महासिद्धि आयत्व में आ जाती है। यदि प्रकृति की "अर्थवत्त्वावस्था" में संयम का प्रयोग किया जाये तो "यत-कामावसायित्व" नाम की चरम सिद्धि आयत्व में आ जाती है। (२३० ह.ले.)

अष्ट महासिद्धियों के परिचय

(१) अणिमा—शरीर आयतन में बृहद् होने पर संयम के प्रयोग से परमाणु तुल्य बन जायगा। (२) लघिमा—शरीर अत्यन्त भारी होने पर भी रूई तुल्य लघु हो जाता है। (३) महिमा या गरिमा—शरीर लघु होने पर भी पर्वताकार हो जाता है। (४) प्राप्ति-दूरस्थ वस्तु का निकट प्राप्त होना। (५) प्राकाम्य—इच्छा का अनभिघात होना अर्थात् संकल्प इच्छा—कठिन से कठिन सोने पर भी कार्य रूप में कर देना। (३) वशित्व-भूत और भौतिक वस्तुओं को भी अपने वश में लाना। (७) ईशित्व—भूत और भौतिक वस्तु या प्राणियों पर प्रभुत्व करने की शक्ति। (८) यत-कामावसायित्व—सत्य संकल्प-लाभ, भूत और भौतिक वस्तुओं में या किसी प्राणी में इच्छानुसार शक्ति-संचार कर देना। यह चरमशक्ति, ऐश्वर्य या विभूति है। इससे दु:साध्य साधन होता है।

नवम महाशक्ति❀

पंच महाभूत का जय करने से कार्य-सम्पद नाम की नवम महा-सिद्धि की प्राप्ति होती है। रूप, लावण्य, बल दृढ़ता और वेग शक्ति आदि गुणों का शरीर में आ जाना—इसी का नाम काय-सम्पद् है।

दशम महासिद्धि

भूत-जय होने से कार्य-सम्पद् का अनभिघात नाम की महासिद्धि की प्राप्ति होती है। इससे शरीर की पूर्ति, रूप और शक्ति का परिवर्तन नींह होता है। शरीर अविनश्वर मालूम होता है। इसी का नाम काया अनभि-घात धर्म नाम की महासिद्धि है।

इन्द्रियों को वशीभूत करना★

पतञ्जलि ने कहा है कि पंच महाभूतों की तरह इन्द्रियों की भी पांच अवस्थायें हैं—[ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय और अर्थवत्त्व❀❀] (१) चक्षु, कर्ण, नासा, जिह्वा और त्वक् जब अपने-अपने विषय वस्तु को ग्रहण करने के लिए प्रवृत्त हो जाते हैं तब यह इन्द्रियगण की "ग्रहण" नाम की प्रथम अवस्था है। (२) इन्द्रियगण जब विषयों को प्रकाशित कर देते हैं तब इसका नाम द्वितीय "स्वरूप अवस्था" है। (३) जब इन्द्रियगण के साथ सात्विक अहंकार अन्तर्निहित रहता है तब इसका नाम तृतीय "अस्मिता अवस्था" है। (४) इन्द्रियों का मूलकारण गुणत्रय सत्व, रजः, तम है। जब गुणत्रय के साथ यह इन्द्रियगण युक्त रहता है तब इसका नाम चतुर्थ "अन्वय अवस्था" है। (५) इन्द्रियों के कार्यों में इन्द्रियों का कोई स्वार्थ नहीं है। इन्द्रियगण पदार्थ हैं। इन्द्रियगण पुरुष के भोग या अपवर्ग के लिए है। यह भोग या अपवर्ग ही इनकी पंचम अवस्था "अर्थवत्त्व" है।

पुण्यार्थी योगी इन्द्रियों की इन पंच विध रूप या अवस्थाओं पर संयम प्रयोग करके इन्द्रियों को वशीभूत या जय कर सकते हैं। इन्द्रियों के ऊपर योगी का सम्पूर्ण आधिपत्य होने के कारण इच्छामात्र सेही वे उत्कृष्टया अप-इन्द्रियों की सृष्टि कर सकते हैं। ये लोग इस शक्ति से अन्धे को चक्षुदान,

---

❀रूप-लावण्य-बल वज्र-संहनत्वानि काय संपत् ।। यो. ३-४६।।

★ग्रहण-स्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्व संयमाद् इन्द्रिय जयः ।। यो. ३-४७ ।।

❀❀हस्त लेख में नहीं है।

बधिर को कर्णदान, खंज को पददान, गूंगे को वाक्शक्ति दान कर सकते हैं।

मनोजय से त्रिशक्ति-लाभ❀

पतंजलि ने कहा है कि इन्द्रिय जय होने से योगी इन त्रिशक्तियों को लाभ करते हैं—मनोजवित्व विकरण-**भाव** और प्रधानजय (प्रकृति-जय)

(१) मनोजवित्व—मन की तरह द्रुतगति, (२) विकरण-भाव—देह की अपेक्षा न रखकर इन्द्रिय गण को बाहर विषयों के साथ संयुक्त कर देना और (३) प्रधान जय—समग्र प्रकृति के ऊपर विजय प्राप्त होना।

प्रथमा शक्ति 'मनोजवित्व'—

लाभ होने से योगी मन की नाईं बाधाहीन होकर सर्वत्र जा सकता है, इन्द्रिय-जय होने पर शरीर में भी बाधाहीन अव्याहत गति शक्ति आ जाती है। साधारण व्यक्ति जहाँ नहीं जा सकते योगी वहाँ जा सकते हैं। मन की जैसी द्रुतगति शक्ति है योगी के अन्दर ऐसी द्रुतगति शक्ति आ जाती है।

द्वितीया-शक्ति 'विकरण-भाव'

लाभ होने से योगी को विगत देह होने पर भी देह-शून्य होने पर भी देहाभिमान न रहने पर भीचक्षुरादि इन्द्रियों का करणत्व अर्थात् ज्ञानोत्पादन-सामर्थ्य प्रबल रहता है। विकरण-सिद्धयोगी लोग दूरस्थ वस्तुओं को जाननेके लिए शरीर के साथ वहाँ नहीं जाते हैं।एक ही स्थान में रहते हुए वे दसों दिशाओं की दूर स्थित और अतीत-वर्तमान और अनागत वस्तुओं को जान सकते हैं।

तृतीया-शक्ति

"प्रधान जय" लाभ होने से इन्द्रियों की 'अन्वय' नामक चतुर्थ रूप या अवस्था पर संयम धारण करके योगी व इन्द्रियों के मूल कारण प्रकृति को वशीभूत या आज्ञाकारिणी कर सकते हैं अर्थात् उस पर योगी का सम्पूर्ण आधिपत्य हो जाता है। इन्द्रियों के पाँच रूपों को या अवस्थाओं को जय करने से इन तीन शक्तियों—मनोजवित्व विकरणभाव और प्रधानजय की प्राप्ति होती है। इस त्रिविध शक्तियों का नाम 'मधुप्रतीका' है। मधु के सर्व अंगों में जैसे अमृतरस रहता है इस सिद्धि के भी सर्वांगों में अमृतरस रहता है।

❀ततो मनोजवित्व विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥ यो. ३-४८ ॥

सर्व वस्तुओं पर आधिपत्य लाभ और सर्व वस्तु जानने का परिणाम*

पतंजलि ने कहा है कि सत्त्व अर्थात् महत्तत्व नामक बुद्धि (मन) और पुरुष अर्थात् शुद्ध चिदात्मा—इन उभयों के पार्थक्य अर्थात् भेद ज्ञान के प्रति संयम प्रयोग करनेसे सर्व भावों पर अर्थात् वस्तुओं पर योगी आधिपत्य और सर्व वस्तुओं के विषय में ज्ञान—इन दो क्षमताओं का लाभ करते हैं।

पुरुष (जीवात्मा) बुद्धि नहीं हैं और बुद्धि भी पुरुष नहीं है ये दो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। साधारणतः लोग इन दोनों को एक ही जानते हैं। चित्त में जब तक रजस्तमोमल रहेगा तब तक यह भेद दर्शन नहीं होगा।

चित्त के मल साफ हो जाने से और चित्त में विषय-कामनाओं के नहीं उठने से समझ लेना चाहिए कि चित्त शुद्ध हो गया। तब विवेक ज्ञान उत्पन्न होता है। इस विवेक ज्ञान के द्वारा हम बुद्धि और पुरुष (आत्मा) का भेद समझ सकते हैं। इस भिन्नता के ज्ञान पर सयम के प्रयोग करने से सर्व वस्तुओं पर आधिपत्य लाभ और सर्व वस्तुओं के विषय में ज्ञान-लाभ सिद्ध होता है।

सब विषयों का अतीत, वर्तमान और भविष्यत् ज्ञान एक साथ एक क्षण के अन्दर उत्पन्न होने से यहां उस ज्ञान का नाम 'सर्वज्ञातृत्व' है। उसमें एक (अतीत) के बाद दूसरे (वर्तमान) और उसके बाद तीसरे (भविष्यत्) के ज्ञान का उदय नहीं होता। सर्व ज्ञातृत्व में भूत, वर्तमान, भविष्यत् का ज्ञान एक ही साथ उदित होता है।

जैसे अचंचल और निस्तरंग स्थिर जल में चन्द्र का प्रतिबिम्ब स्पष्ट देखा जाता है इसी प्रकार स्थिर चित्त में बुद्धि और पुरुष (आत्मा) का भेद-ज्ञान सुस्पष्ट होता है। चित्त में कामना रहने से चित्त चंचल होता है। कामना-शून्य चित्त स्थिर है। रजः और तमोमत से कामना की उत्पत्ति होती है। इसलिये चित्तस्थ रजस्तमोमल साफ होने से चित्त निर्मल और स्थिर होता है। स्थिर चित्त में ही विवेक ज्ञान की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार के निर्मल चित्त में बुद्धि और पुरुष का भेद ज्ञान उत्पन्न होता है और उस भेद-ज्ञान पर संयम धारण करने से "ज्ञान-रूपा-सिद्धि सर्वज्ञातृत्व" और "क्रिया रूपा सिद्धि सब वस्तुओं पर आधिपत्य सिद्धि" मिल जाती है।

---

*सत्त्व पुरुषान्यता ख्याति मात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं च।
॥ यो. ३-४९ ॥

इसी सिद्धि का नाम योगशास्त्र में "विशोका-सिद्धि" है। इस सिद्धि की प्राप्ति से किसी वस्तु का शोक नहीं रहता है। इस सिद्धि में किसी वस्तु के खो जाने का मिथ्या ज्ञान नहीं रहता है और इसलिये ही इसका नाम विशोका सिद्धि है। (ह. ले. २४॥)

कैवल्य-लाभ या मुक्ति-लाभ (मोक्ष-लाभ)[1]

विशोका सिद्धि का लाभ होने पर यदि उसके प्रति योगी का वैराग्य उत्पन्न होता है तो उसी योगी के बुद्धिमालिन्य की मूल कारण अविद्या नष्ट हो जाती है। तब ही कैवल्य अर्थात् स्वरूप-प्रतिष्ठारूप स्थिति प्रवाह का लाभ होता है। उस समय उस प्रकार के योगी पर प्रकृति का अधिकार नहीं रहता है।

विवेक-ज्ञान या विवेक-ख्याति अति उच्च स्थिति है। उस उच्च स्थिति के साथ भी कैवल्य की तुलना करने से विवेक ख्याति तुच्छ समझी जायगी विवेक-ख्याति बुद्धि-सत्त्व का धर्म है बुद्धि-सत्त्व विकारशील है और इसलिये तुच्छ और हेय है। बुद्धि-सत्त्व विकारशील है, लेकिन पुरुष अधिकारी है। पुरुष उस बुद्धि-सत्त्व से सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार की प्रज्ञा के उदय होने से पुरुष का अनादि अनन्त काल से संचित संस्कार बीज दग्ध हो जाता है। बीज दग्ध हो जाने से वह प्रसव-क्षमताहीन होता है। उससे नये संस्कार की उत्पत्ति नहीं होती है। योगी चिरकाल के लिये संसार-ताप से मुक्त हो जाते हैं। तब बुद्धि लय-प्राप्त होता है और पुरुष से गुणों का अत्यन्त विच्छेद हो जाता है। इसी का नाम कैवल्य है।

विशोका-सिद्धि के सर्वज्ञातृत्व और सर्वभावाधिष्ठातृत्व-लाभ अति उच्च स्थितियाँ हैं। उस से भी वैराग्य होने से अर्थात् उस विवेक-ख्याति के प्रति भी आसक्ति-हीन[2] होने से दोष-बीज, अविद्या आदि का बन्धन और धर्माधर्म रूप कर्म-बन्धन नष्ट हो जाते हैं।[3] तब ही पुरुष को स्व-रूप में स्थिति का लाभ होता है। यह ही सर्वोच्च गति और स्थिति है। इससे ऊपर और कुछ है। इसी का नाम मुक्ति या मोक्ष है। इसी का नाम अमृतत्त्व-लाभ है।

---

१. तद्वैराग्यादपि दोष बीजक्षये कैवल्यम् ॥यो. ३-५०॥

२. प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेक ख्यातेःधर्ममेघःसमाधिः ॥ ४-२९॥

३. ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥यो. ४-३०॥

चार प्रकार के योग और योगी❀

स्थिति से योग और योगी चार प्रकार के हैं। योग के प्रारंभ से पूर्णता-प्राप्ति तक आलोचना करने से योग के और योगीके चार विभाग देखे जाते हैं। इसके अनुसार भिन्न-भिन्न नामों का प्रचलन है—प्राथम—कल्पिक, मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योति, और अतिक्रान्त-भावनीय। इन सबों के आभास पहले भी दिये गये हैं।

प्रथम—योग-शिक्षा के विषय में जो लोग बिल्कुल नये हैं और जो लोग योग में अविचलित और दृढ़ नहीं हुए हैं, जिनके संयम में या समाधि में किसी प्रकार की सिद्धि भी नजर नहीं आती है। केवल मात्र अति अल्प मात्र ज्ञान का विकास अनुभव में आया हो—इस प्रकार के योगी का शास्त्रीय नाम "प्राथम कल्पिक" है।

जो लोग प्राथम-कल्पिक अवस्था का अतिक्रम करके मधुमती नाम की द्वितीय स्थिति को प्राप्त हुए हैं। ऋतम्भरा नाम की प्रज्ञा लाभ करके भूत और इन्द्रियों को वशीभूत किये हैं और सर्वभावों के अधिष्ठातृत्व और सर्वज्ञातृत्व लाभ के लिये यत्नशील हैं—इस प्रकार के योगी का नाम "मधुभूमिक" है।

जो लोग मधुभूमिक अवस्था का अतिक्रमण करके विभूति या ऐश्वर्य लाभ के लिये प्रलुब्ध नहीं हैं और स्वार्थ संयम में यत्नवान् है—इस प्रकार के योगी का नाम "प्रज्ञाज्योति" है।

जो लोग इस प्रज्ञाज्योति स्थिति को अतिक्रमण करके अत्यधिक विवेक ज्ञान के अधिकारी हुए हैं, जो लोग विवेक ज्ञान के स्थूल फल के लिये लोभी नहीं हैं और समाधि काल में जिनको किसी प्रकार की विघ्न-बाधा बिलकुल नहीं पड़ती है और जो जीवन्मुक्त हैं इस प्रकार के योगी का नाम "अतिक्रान्तभावनीय" है।

दिव्य भोगों में प्रलुब्ध होने से और योगप्रभावों के प्रति विस्मित होने से कैवल्य या मोक्ष-लाभ में विघ्न होता है। विभूतियों में प्रलुब्ध होने से योग भंग होता है और पतन होता है। विस्मय आ जाने से योगी को कृतकृत्यता का बोध आता है। विषयभोगेच्छा और विषय भोग, विस्मय या आश्चर्य—ये सब योग के लिए विघातक हैं। सच्चे योगी विभूतियों से डरते हैं।

योगबल से बुद्धि निर्मल होने से, बुद्धि के रजोगुण और तमोगुण

❀ स्थान्युपनिमन्त्रण संगस्मयाकरण पुनरनिष्ट प्रसंगत: ।।यो. ३-५१ ।। देखो व्यासभाष्य

निर्जित होने से या बुद्धि-मालिन्य रहित होने से बुद्धि में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता है। तब बुद्धि स्थिर, धीर और निश्चल हो जाती है। बुद्धि की इस स्थिति का नाम "सत्त्व-शुद्धि" है। सत्त्व-शुद्धि हो जाने से नित्य आत्मा का कल्पित भोग तिरोहित हो जाता है। इस प्रकार की भोग-निवृत्ति का नाम "आत्म-शुद्धि" है। यहाँ तक पहुँचने से कैवल्य, मुक्ति या मोक्ष का लाभ होता है।

इस श्रेयोलाभ के लिए ही मैंने काशी से आकर चाणोद, व्यासाश्रम और अहमदाबाद (दुग्धेश्वर मन्दिर) में श्रीमत् स्वामी योगानन्द, ज्वालानन्दपुरी, शिवानन्द गिरि आदि योगाचार्य गुरुओं से योग-शिक्षा के विषय में क्रियात्मक रूप से परिचय लाभ किया था। मैंने योग-शिक्षा के बाद इन लोगों से योगसाधना के लिए उपदेश की प्रार्थना की थी। इन्होंने मुझे योग-साधना के लिए आबू पर्वत में जाने के लिए परामर्श दिया और वहाँ इसके बारे में सब प्रबन्ध भी करवा दिया।

योग-शिक्षाओं का विषय—जो-जो प्रधान शिक्षायें योग के विषय में विभिन्न स्थानों में विभिन्न समयों पर गुरुओं से मिली थीं और तीन वर्षों के श्रम के बाद जिन पर आज साधना का प्रयोजन है वे शिक्षा-विषय निम्न प्रकार के हैं:—

साधना के विषय—क्रिया योग, अविद्यादि पंचक्लेश, अस्मितादि के भेद अविद्यादि क्लेशों का विवरण, स्थूल और सूक्ष्म रूप से क्लेशों का नाश, दृष्ट और अदृष्ट-जन्म-वेदनीय क्लेश, जाति और भोगों की उत्पत्ति, अवश्यम्भावी परिणाम (परिताप,) योगी की दृष्टि से सबके सब दुःख ही भविष्यत् दुःख ही परित्याज्य है, देह दुःख का कारण, दृश्य का स्वरूप, गुणों का विभाग और विशेषता पुरुष का स्वरूप, दृश्य के द्वारा पुरुषार्थ-सिद्धि, दृश्य का सम्पूर्ण उच्छेद नहीं होता है, प्रकृति और पुरुष के संयोग का फल संयोग का हेतु अविद्या है और उसके विनाश से ही कैवल्य लाभ, विवेक ज्ञान से दुःख का विनाश, विवेक ज्ञान की भूमि, ज्ञान-दीप्तिका उपाय, यम निमादि अष्टांग योग, यमों के भेद, नियमों के भेद, अहिंसादि यमों के भेद, शौचादि नियमों के भेद, हिंसादि वितर्कविनाश के उपाय और विवरण, अहिंसादि सिद्धि का फल, आसन प्रकरण, प्राणायाम प्रकरण और प्रत्याहार-प्रकरण।

उत्साह और अग्रगति

गुरुओं की कृपा से मेरा धारणा, ध्यान और समाधि की शिक्षा का पाठ समाप्त हुआ। इसके बाद ही साधना का प्रश्न आया। धारणा ध्यान समाधि की शिक्षा में मुझे आशातीत रूप से फल मिला था। गुरुओं ने

मुझे उत्साह दिया और मेरे अग्रगति के पथ को खोल दिया। उन्होंने कहा कि शिक्षा और साधना एक वस्तु नहीं हैं। अनुकूल स्थिति में साधना होनी चाहिये। आश्रमों में एकाधिक व्यक्ति संग में रहते हैं। यहाँ तो देखादेखी एकाधिक शिक्षार्थी मिल जुल करके शिक्षा के पाठ समाप्त कर सकते हैं लेकिन साधना के पाठ के लिये निर्जन एकान्त और निःसंग वातावरण चाहिये। भीड़-भाड़ से सर्वथा अलग होके रहना चाहिये। इसलिये साधनेच्छु योगी पर्वतों के कन्दरों में, भू-विवरों में या निर्जन वनों के वृक्षों की छायाओं में आश्रय लेते हैं। गुरु लोगों ने कहा—कि तुम योग-शिक्षा में बहुत ही तेज निकले। साधना में भी तुम आशातीत सिद्धि लाभ करोगे इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह तो हमारा आशीर्वाद है। तुम्हारे लिए साधना का अनुकूल स्थान *आबू पर्वत है। आबू अरावली पर्वत का शृंग है। वहां साधना का अनुकूल स्थान है। वहाँ वसिष्ठाश्रम, गौतमाश्रम और भृगु आश्रम है। स्थान-स्थान पर कुंड हैं उनके अतिरिक्त गोपीचन्द की गुफा, रामगुफा आदि बहुत गुफायें हैं। वहां साधना के लिए गुफायें मिल जाती हैं। जनता की भीड़-भाड़ से दूरवर्ती गुफा ही साधना के लिए सर्वथा अनुकूल रहती है। भक्त तीर्थयात्री लोग गुफाओं के सभी साधकों के लिए खाद्य और आहार्य वस्तु पहुँचा देते हैं। वहाँ जाकर योग की साधना और तपस्या आरम्भ कर दो। बीच-बीच में हम लोग वहां तुम्हारी साधना देखने के लिये जायेंगे।

आबू पर्वत में—स्वामी ज्वालानन्द पुरी के साथ मैं सबसे विदाई लेकर अहमदाबाद होता हुआ आबू पर्वत के लिये रवाना हो गया था। मानपुर से आगे हृषिकेष का मन्दिर मिला। दो कुण्ड और चन्द्रावती नगर के ध्वंसावशेष देखने को मिले थे। अम्बरीष के आश्रम से स्वामी तर्पणानन्द हमारे साथ सम्मिलित हो गये थे। तीनों ने एक साथ पर्वतारोहण प्रारम्भ कर दिया। आबू पर्वत में कर्णिका तीर्थ, पंगुतीर्थ, अग्नितीर्थ, पिंडारकतीर्थ, नागतीर्थ और कपिलातीर्थों का दर्शन किया। गुरुजी ने मेरी साधना के लिए कई एक गुफाओं को दिखाया उनमें गोपीचन्द्र गुफा, भर्तृहरि गुफा, चम्पा गुफा, रामगुफा और अर्व्वदा गुफा उल्लेख योग्य हैं। हमारी

*योगाभ्यास की रीति सीख के आबूराज पर्वत में योगियों को सुन, वहाँ जाके अर्वदा, भवानी आदि स्थानों में भवानी गिरि आदि योगियों से मिलके और योगाभ्यास किया।—जन्म चरित्र पं० भगवद्दत्त पृ-२५

योग-साधना के लिये गुरुजी ने योग-शिक्षा का प्रदत्त पाठ फिर स्मरण करवा दिया। जो शिक्षा योग के विषय में मिली है उसके लिए कई वर्ष लग गये, लेकिन वह पाठ पाठ ही है, अगर इस पाठ को क्रियात्मक साधनाओं के द्वारा व्यवहार में नहीं लाया जाय। जो पाठ मिले हैं उन पर साधनाओं के स्थान के लिए पर्वत शृंग आबू ठीक हैं और साधनाओं के समय के लिए और तीन वर्ष ठीक हैं। मैंने सहर्ष स्वीकार किया।

आबू शिखर लगभग चार योजन लम्बा और आधा योजन चौड़ा है। वहाँ सब आश्रम मन्दिर और गुफाओं में अपनी साधना के अनुकूल स्थान खोज करके मैंने रामकुण्ड (१५० पृ. ह. ले.) सरोवर के समीप राम-गुफा को उपयुक्त और अनुकूल साधन-क्षेत्र चुन लिया था और वहां ही अपनी योग-साधना आरम्भ कर दी थी।❀ दिनचर्या गुरुजनों के निर्देशानुसार ही रखी गई थी। दिनचर्या में मेरी प्रवर्तक विधि और निवर्तक विधि निम्न प्रकार की थी :—

निवर्तक और प्रवर्तक विधि—

एक प्रहर रात बीतने पर ही दो पहर काल में सो जाना, चतुर्थ प्रहर के प्रारम्भ में ही नींद से उठना, प्रातःकालीन शौचादि कर्म से निवृत हो जाना और लवणाक्त (नमकीन) पानी भरपेट पीकर दिन के प्रथम प्रहर में साधना में बैठ जाना। उदीयमान सूर्य सम्मुख रखना अच्छा है। पूरे दो प्रहर काल तक क्रमानुसार धारणा ध्यान समाधि नामक संयम साधना में निमग्न हो जाना समाधि साधना है।

समाधि जब तक रहे यदि दो प्रहर काल से अधिक भी रहे तो उस को रहने देना, समाधि से पहले या धारणा ध्यान से पहले समाधि काल की अवधि के सम्बन्ध में सोचना बन्द रखना, समाधि की सीमा जितनी बढ़ जाय, उतनी ही अच्छी है।

समाधि टूटने के बाद

प्राकृतिक दृश्य देखनेके लिए निकल जाना, मनुष्य निर्मित शिल्प-सम्भार जितने कम देखोगे उतना ही अच्छा है। (आकाश, ग्रह नक्षत्र, ★) पहाड़-पर्वत, नद-नदी वृक्ष-तरु, गुम्फ-लता, फल-फूल और पशु-पक्षी, कीट पतंगादि के सौन्दर्य देखना।

परिधान के लिये दो लंगोटियाँ, दो अन्तर्वास और दो बहिर्वास बहुत हैं, इससे कम हो तो और भी अच्छा है।

❀हस्त लेख पानी से नष्ट हो गया।

★हस्त लेख अस्पष्ट कठिनता से अनुमान किया गया पाठ। सं०

स्नान इच्छानुसार एक बार या एकाधिक बार हों, वर्तमान या पूर्वजीवन के संस्कारों के अनुसार अशुभ या कुत्सित स्वप्न देखने से नींद टूटने के साथ-साथ ही स्नान करना।

दिनभर **उपवास** करना और रात को नमकीन पानी पी लेना, दूध तक नहीं पीना और फल-फूल खाना नहीं।

सम्बल—दो तृणासन, दो कम्बल, एक लोटा, एक दण्ड यह सम्बल रहें।

खाना—खाने के लिये सोचना नहीं,तीर्थ यात्रियों से या भक्त लोगों से भेंट आ जाने पर अपनी एक दिन की आवश्यकतानुसार उनमें से खाने की वस्तु रख लेना और शेष वापस दे देना। यदि वे वापिस न हों तो वह वस्तु पशु-पक्षी कीट पतंग या दूसरे प्रार्थी मनुष्यों को दे देना। दूसरे दिन के लिये कुछ भी संचय न करना,किसी दिन आहार्य वस्तुओं की भेंट नहीं आनेसे **किसी से भी नहीं माँगना,नमकीन पानी पी ले**ना या फल खा लेना, फल नहीं मिलने से फल की पत्तियों को ही पीस कर खा लेना।

वाचंयम—किसी तीर्थ यात्री से प्रयोजन के अतिरिक्त बातचीत नहीं करना।

दृष्टि—पुरुष हो या स्त्री हो किसी के प्रति एक निमेष के लिये भी तीव्र या तीक्ष्ण दृष्टि से नहीं ताकना, व्याकुल न हो जाना।

चरण वन्दना—किसी को भी पाद-स्पर्श करने नहीं देना।

आशीर्वाद—किसी का भी मस्तक स्पर्श करके आशीर्वाद नहीं देना।

एकान्त—किसी को साधना के स्थान में आश्रय नहीं देना।

असंग—दूसरे की किसी व्यवहृत वस्तु को भेंट के रूप में नहीं लेना।

निमन्त्रण—किसी के स्थान में जाने के लिये अनुरोध या निमन्त्रण स्वीकार नहीं करना।

मौन—जहाँ तक हो सके आकार-इंगित से ही बातचीत करनी और वृथावाक्य प्रयोग नहीं करना, नहीं पढ़ना, पत्र या साधना से सम्बन्धरहित पुस्तकादि नहीं रखना।

पत्र व्यवहार—किसी को पत्र लिखने का सुयोग या पता नहीं देना और लिखित कागज या हस्ताक्षर नहीं देना या नहीं लेना किसी से पत्र या रुपये डाक से आने से स्वीकार नहीं करना।

रोग में—बीमार पड़ने पर केवल उपवास करना, किसी से भी सेवा, यत्न या शुश्रूषा नहीं लेनी। सम्पूर्ण रूप से उपास्य परम प्रभु के शरण में रहना।

यहाँ मेरे दो उपदेष्टा मिल गये—स्वामी कैवल्यानन्द और स्वामी धर्मानन्द।

गुरुओं का निरीक्षण

हमारे गुरु लोगों में से कोई न कोई मेरी स्थिति को देखने के लिए और अपने-अपने साधन सम्बन्धी कार्यों के लिए आ जाते थे। दूसरे वर्ष में गुरु लोगों ने आकर हर्ष प्रकट करके कहा—

"दयानन्द! अब तुम परीक्षा-सागर के सम्मुखीन हुए हो। तुम्हारे अन्दर धीरे-धीरे विभूतियों का प्रकाश आ रहा है। अतीन्द्रिय शक्तियों का आविर्भाव ही विभूतियों का प्रकाश है। धारणा ध्यान समाधि का अभ्यास पूर्ववत् ही चालू रखना। अगली बार जब हम तुमसे मिलेंगे तब तुम्हारी उपलब्ध विभूतियों का हिसाब लेंगे। याद रखो, विभूति के आने के साथ-साथ ही बहुत साधकों का पतन हो जाया करता है। विभूतियों के मोह में किसी प्रकार से अपने को धन्य समझ कर वे लोग साधारण व्यक्तियों को इन्द्रजाल या भोज विद्या दिखा कर अर्थोपार्जन में या इन्द्रियों के भोगों में आबद्ध हो जाते हैं। योगी साधना के जिस स्तर में पहुँच विभूतियों को प्राप्त होते हैं उस स्तर से कोई कोई गिर जाते हैं। उनकी साधना व्यर्थ बन जाती है। तुम अति सावधान रहना। कुछ विभूति या अलौकिक शक्ति की उपलब्धि हो जाने पर उसको परीक्षा के रूप में समझ लेना। याद रखो **गुरुओं को छोड़ कर दूसरे किसी से भी इसके बारे में कुछ नहीं प्रकाश करना।**

"दयानन्द! तुमने माता-पिता, घर-बार छोड़ दिया था, केवल योग विद्या सीखने के लिये हो न! योग विद्या अनन्त अपार है। हमसे भी बहुत बड़े-बड़े योगी बहुत संख्या में भारत वर्ष के वन-जंगल, पहाड़-पर्वत, आश्रम-तपोवन, पर्वत- कन्दर और भूविवरों में हैं। ये लोक चक्षुओं के अन्तराल में रह कर योग साधना और कठोर तपस्या कर रहे हैं। लेकिन वे सब कुछ साधन मात्र हो है विभूतियाँ तुम्हारी दासी बन कर तुम्हारे अधीन हो के रहें। ये शक्तियाँ परार्थ के लिये या जीव सेवा में प्रयुक्त करो। अविद्या से मुक्त होना ही तुम्हारी मुक्ति है और इस मुक्ति से ही मृत्युंजय बनो। इस मृत्युंजय के लिये ही तुमने घरबार छोड़ा था। कैवल्य-प्राप्ति के लिये आगे हिमालय की तरफ गुरुजनों को ढूँढना।

गुरुओं का आदेश और उपदेश हमने शिरोधार्य किया और निश्चय किया कि और एक वर्ष यहाँ रह कर मैं **सारे भारतवर्ष** और हिमालय में भी घूम-घूम कर योगियों का सन्धान करूँगा। एक वर्ष और मैंने फिर ध्यान धारणा-समाधि में यानी संयम में ही व्यतीत किया था। आगे और ठीक एक वर्ष का काल मैंने अति सावधान रहकर गुरुओं की प्रतीक्षा में समाधि-साधना की थी।

एक वर्ष बाद हमारे दोनों गुरु ही आबू पर्वत-शिखर पर आये थे और आकर मेरे पास पहुँच गये थे। पूछे जाने पर मैंने अनुभव में और उपलब्धि में आयी हुई विभूतियों का हिसाब दिया था। महर्षि पतंजलि के राजयोग के अनुसार भिन्न-भिन्न विषयों पर संयम-धारण करने से यानी धारणा-ध्यान समाधि के प्रयोग करने से विभिन्न अतीन्द्रिय शक्तियों का प्रकाश आ जाता है—सब कुछ उनको उन्होंने सुनाया। मेरे अनुभव में जो-जो शक्तियाँ आयी थीं उनका भी मैंने वर्णन किया था जैसे—

भूत और भविष्यत् का ज्ञान।
सब प्राणियों की भाषाओं का ज्ञान।
पूर्व जन्मों का स्मरण।
दूसरों के चित्तों का ज्ञान।
अन्तर्धान होना।
अपने रूप, शब्द, स्पर्शादि को भी अन्तर्हित करना।
मृत्युकाल को जान लेना।
बलवान् पशुओं के अनुरूप बल प्राप्त होना।
सूक्ष्म अन्तराल में आवृत और अति दूरवर्ती वस्तुओं को देखना।
लोक-लोकान्तर भुवनों का जानना।
नक्षत्रों को जानना।
नक्षत्रों की गतियों को जानना।
शरीर और मन को स्थिर करना।
सिद्ध पुरुषों को देखना और उनसे बातचीत करना।
वैराग्य लाभ का सहायक (२६० ह.ले.सं०) (ज्ञान प्राप्त होना)
स्वचित्त और पर चित्त का ज्ञान।
आत्म-ज्ञान।

❀ अस्पष्ट हस्तलेख है।

दिव्य ज्ञान या सूक्ष्म-ज्ञान लाभ करना।
चित्त का दूसरे शरीर में प्रवेश करना।
शरीर को अत्यन्त हलका करना।
इच्छा-मृत्यु।
शरीर की ब्रह्म तेज से उज्ज्वल करना।
सूक्ष्म इन्द्रियशक्ति लाभ।
आकाश-गमन की शक्ति।
चित्त के आवरण का नाश।
महाभूतों को वशीभूत करना।
महाभूत वशीभूत होने से अष्ट महासिद्धि (अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, महिमा, प्राकाम्य, वशित्व, ईशित्व और सत्य संकल्पता),
काय-सम्पत् (रूप, लावण्य, बल और दृढ़ता)
शरीर का अटूट भाव।
इन्द्रिय-संयम।
अव्याहत गति शक्ति लाभ।
पुरुष और प्रकृति का भेद-ज्ञान।
बन्धन से मुक्ति।
अलौकिक द्रव्य-विवेक-ज्ञान।
सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु-ज्ञान।
सब वस्तुओं के भेद ज्ञान।
विवेक ज्ञान (पुरुष-प्रकृति का भेद ज्ञान और कैवल्य लाभ।)

गुरुओं से जब मैंने कहा था कि इन सब विभूतियों में से अधिकांश विभूतियाँ मेरे अनुभव के अन्दर आ गई हैं। किसी गुरु ने क्षुधा-पिपासा के बारे में मुझ से पूछा था। मैंने कहा था कि आबू शिखर में क्षुधा-पिपासा मेरे लिये समस्या के रूप में नहीं रही थी। **मैं अब अन्न जल के बिना दो महीनों तक रह सकता** हूं। पतंजलि ने कहा है कि कण्ठ-कूप के नीचे उर-प्रदेश में कूर्म नामक नाड़ी है। वह नाड़ी अत्यन्त दृढ़ है। वहाँ चित्त संयम करने से शरीर और मन की स्थिरता आ जाती है। बहुत बार मैंने अनुभव किया था। गले में गढ़े के रूप में जो कुआ-सा स्थान है उसमें संयम (धारणा-ध्यान-समाधि) करने से मेरी भूख और प्यास दोनों की निवृत्ति हुयी थी। इसी प्रकार और भी बहुत विभूतियों के बारे में मेरे अनुभव हैं।

आबू शिखर में आये हुए गुरु और वहाँ के रहने वाले गुरु लोगों ने हर्ष प्रकट करके सब ही तरह-तरह के उपदेश दिये थे—'तुम द्वितीय श्रेणी के योगी बन गये हो। दयानन्द! तुम इन योग की शक्तियों को अपने शारीरिक या मानसिक स्वार्थ-साधन में प्रयोग नहीं करना। पदार्थ में और जगत् के हित के लिये ही इन विभूतियों का व्यवहार करो। कैवल्य लाभ के लिये जो विभूति है केवल वही विभूति तुम्हारे लिये है। बाकी विभूतियाँ जगत् की सेवा के लिये हैं। इसके अव्यवहार करने से इनका लोप हो जायगा। अब आबू-पर्वत के सीमाबद्ध स्थान को छोड़ कर बाहर जगत् में प्रवेश करो। धर्म की सेवा का एकमात्र साधन है। इस धर्म-बल के साथ धर्म जगत् को देखो। हरिद्वार का कुम्भ मेला अति निकट है। वहाँ आर्यावर्त के मुख्य-मुख्य साधु संन्यासी एकत्र हो जाते हैं। वहाँ के दृश्य देख लो। धर्म जगत् का हाल और सेवा धर्म अनुभव में आ जायगा।

दूसरे दिन वे लोग वहां से चले गये। मैं आबू छोड़कर हरिद्वार के कुम्भ मेले में जाने के लिये तैयार होने लगा। वहां के बहुत साधक और संन्यासी एक साथ वहां जाने के लिये तैयार हो गये थे। मैं भी उनके अन्दर सम्मिलित हो गया था।

———

पंचम अध्याय

हरिद्वार-कुम्भमेला

आबू से पुष्कर व अजमेर

योग-शिक्षा और योग-साधनों में मैंने छः वर्ष बिताया था लेकिन आगे दूसरे और योग-सिद्ध महापुरुषों और तपस्वियों के सत्संग लाभ के लिए मेरे अन्दर प्रबल आग्रह हुआ। आबू पर्वत के साधुओं ने मुझे हरिद्वार में होने वाले कुम्भ मेले में सम्मिलित होने के लिए परामर्श दिया था। वह मेला वैशाख सम्वत् १९१२ को होने वाला था। मैं हरिद्वार जाने के लिये तैयार होने लगा। मुझे विदाई देने के दिन आबू-पर्वत के परिचित (ह० ले० पृ० २६५) साधु-सज्जन-पुजारी लोग लगभग सभी हमसे मिले। उनमें विमलशाह जैन मन्दिर के दो साधु, पंगुतीर्थ, अग्नितीर्थ, पिंडारक तीर्थ, भृगु आश्रम, रामकुण्ड, नागतीर्थ, अचलगढ़, यज्ञेश्वर आदि स्थानों के साधु-पुजारी तपस्वी लोग सम्मिलित थे।

मैंने सभी से कृतज्ञतापूर्ण भाव से विदाई लेकर मारवाड़, अजमेर, जयपुर, अलवर, दिल्ली और मेरठ आदि होते हुए पैदल हरिद्वार की तरफ यात्रा शुरू की थी। रास्ता लगभग सत्तर योजन का था। मैं कम से कम पाँच योजन रास्ता अतिक्रम करता था। अति सबेरे उठकर यात्रा शुरू करता था। तालाब मिलने से स्नानादि और संध्या, उपासना, प्राणायामादि कर लेता था। हाट-बाजारों में या गाँव में या रास्ते में किसी न किसी व्यक्ति से खाने की चीजें अचानक आती थीं। मैं खाने के लायक चीजें ले (ह० ले० पृ० २६६) लेता था और बाकी चीजें गरीब दुखियों को दे देता था। सन्यासी का वेष देखकर गाँवों के और हाट-बाजारों के रहने वाले लोग कठिन रोगों की दवाई के लिए या सुख-दुःख जानने के लिए मुझे घेर लेते थे। बाध्य होकर मैं आत्मरक्षा के लिए मौन धारण कर

लेता था। दिन हो या रात हो, निर्जन स्थानों में ही मैं विश्राम करता था।

इसी रूप से मैं पुष्कर पहुँच गया था। वहाँ योग सिद्ध पुरुषों के बारे में सन्धान लेने लगा। पुष्कर तीर्थ पंचतीर्थों में एक है और च सरोवरों में एक है। पंचतीर्थ ये हैं—पुष्कर, कुरुक्षेत्र, गया गंगा और प्रभास। पंच सरोवर ये हैं —मानसरोवर, पुष्कर सरोवर बिन्दु सरोवर, नारायण सरोवर और पम्पा सरोवर। पुष्कर तीर्थ में पुष्कर सरोवर तीन हैं—ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ। ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये क्रमानुसार तीनों देवतायें कही जाती हैं। पुष्कर को छोड़कर (ह० ले० पृ० २६७) और ब्रह्मा का मन्दिर मिलना कठिन है। ज्येष्ठ पुष्कर सरोवर से थोड़ी दूर पर प्रधान मन्दिर ब्रह्मा का ही है। वहाँ सरोवर से सरस्वती नदी निकली है और यह सावरमती नदी से मिल जाती है।

पुष्कर में मैं सिद्ध-योगियों के विषय में अनुसन्धान करने लगा था। किसी जटिआ बाबा के परामर्शानुसार नागपर्वत की गुफाओं में ढूँढ़ते हुए मैंने भर्तृहरि गुफा में एक मौनी बाबा को देखा। बातचीत हो नहीं सकी। उन्होंने अति द्रुत वहाँ से मुझको हटने के लिये निषेधात्मक इशारा किया। मैं गुफा से बाहर आने के साथ साथ ही देखा कि दो बृहदाकार अजगर सर्प मौनी बाबा की संकीर्ण गुफा के अन्दर धीरे-धीरे प्रवेश कर रहे हैं। गुफा से बाहर एक पहाड़ी भील ने कहा कि वह दोनों अजगर मौनी बाबा के साथ ही उस गुफा में रहा करते हैं। (ह० ले० पृ० २६८) वहाँ किसी दूसरे पर्वत की चोटी पर सावित्री मन्दिर में एक साधु ने मुझे कहा "तुम्हारा मनोरथ पुष्कर में पूर्ण नहीं होगा। हरिद्वार के कुम्भ-मेले में शत-सहस्र साधु-योगी-तपस्वी हिमाचल से नीचे उतर आयेंगे। उन्हीं में से किसी के संग में रहते हुए हिमाचल-भ्रमण करना ही अच्छा है। हिमाचल के कन्दरों में साठ हजार से भी ऊपर साधु-योगी-तपस्वी रहते हैं। तिब्बत तक में भी ये लोग रहते हैं। मानसरोवर और ल्हासा तक भी भ्रमण करना चाहिये। वहाँ हजारों साधु योगी तपस्वी लोगों के दर्शन मिलते हैं।" साधुजी की इसी बात को शिरोधार्य करके पुष्पर छोड़कर हरिद्वार की तरफ मैं आगे बढ़ने लगा। पुनः अजमेर आकर एक नंगा बाबा के साथ मैं तारागढ़ नाम के गिरि-दुर्ग पर पहुँचा। वहां से अजमेर नगर की शोभा बहुत ही सुन्दर मालूम होती है। वहाँ किसी साधु तपस्वी से मुलाकात

होने की आशा नहीं थी। आयना सागर के तटों में यज्ञ करते हुए ८-१० (ह० ले० पृ० २६६) साधुओं को मैंने देखा था। ये लोग सबके सब गांजा पीते थे और अग्नि में घृत की आहुतियाँ देते थे। वहाँ नंगे बाबा मुझे "ढ़ाई दिन के झोंपड़े" से ले आये थे। मैंने उक्त स्थान को हिन्दू या बौद्ध भजनालय के रूप में देखा था, लेकिन अब वहाँ मुसलमानों का भजन स्थान बन गया—ऐसा देखा। भारत के शेष सम्राट्, पृथ्वीराज, जयचन्द्र, संयुक्त, स्वयंवर और शाहबुद्दीन के बारे में नंगा बाबा ने बहुत कुछ कहानियाँ सुनाते-सुनाते मुझे जयपुर होकर दिल्ली जाने की सड़क दिखा दी।

स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिए व्यापक आन्दोलन

अजमेर के अनुभव—पुष्कर-अजमेर आने-जाने के समय मुझे कुछ नये अनुभव प्राप्त हुए थे। रास्ते में, मन्दिरों में, बाजारों में, दुकानों में, नहाने के घाटों में, अतिथिशालाओं में—सर्वत्र स्वदेश की और स्वधर्म की रक्षा के लिए आन्दोलन और आलोचना (ह.ले.पृ. २७०) व्यापक रूप से चल रही थी। धनी-गरीब, ज्ञानी-मूर्ख, वृद्ध-नव-जवान, पुरुष-स्त्री सभी के मुखों से यही सुनाई देता था कि विदेशी पादरियों द्वारा ईसाई धर्म के व्यापक प्रचार और प्रलोभन से स्वधर्म की रक्षा करनी चाहिये। विदेशी राहु के ग्रास से स्वदेश की रक्षा करनी चाहिये। इन सब चर्चा और आंदोलन से मालूम होने लगा था कि विदेशी और विधर्मियों की सर्वग्रासी कूटनीतियों से बचाने के लिये जनसाधारण कोई रास्ता ढूँढ़ रहे थे। विदेशी और विधर्म के प्रति भय और घृणा के भाव का धीरे-धीरे विस्तार हो रहा था।

मारवाड़ के अनुभव—अजमेर आने से पहले मारवाड़ से भी अनुभव मिला था कि जनता स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा और पुनरुद्धार के लिये किसी शक्तिशाली और धार्मिक राजा को ढूँढ़ रही थी। (ह० ले० पृ० २७१) उपयुक्त नेता और संचालक मिलने से युद्ध करने के लिए भी तैयार थी। ईसाई-राज और ईसाई-धर्म से बचने के लिये हिन्दू और मुसलमान एक साथ मिलकर युद्ध करने के लिये तैयार हो जायेंगे और प्रयोजन आने पर प्राण भी दे देंगे।

जयपुर का अनुभव—पुष्कर से जयपुर आकर वहाँ मैंने गलतातीर्थ, गालव ऋषि की तपोभूमि, सूर्य-मन्दिर और मुसलमान बादशाह के आक्रमण से बचाने के लिये वृन्दावन से लाई गई गोविन्दजी की मूर्ति के मन्दिर

में योगी, तपस्वी और साधकों का अनुसन्धान किया था। गालव ऋषि के आश्रम में एक तांत्रिक साधु मिले थे। उन्होंने मुझे शिष्य बनाना चाहा। उनकी साधन-प्रणाली बहुत भयंकर और घृणाकर मालूम हुई थी। मैं वहाँ से चल दिया। यहां का गोविन्दजी का मन्दिर प्रसिद्ध है। श्री बल्लभाचार्य को यमुना किनारे यह मूर्ति मिली थी। वृन्दावन में इसकी प्रतिष्ठा हुई थी। मुसलमान बादशाह औरंगजेब के आक्रमण से बचाने के लिये यह मूर्ति और गोविन्ददेव की मूर्ति वृन्दावन से जयपुर लाई गई थी। प्राचीन राजधानी और राजस्थान की अम्बर नगरी में गलता टीला है। उसमें गालव ऋषि की तपोभूमि में एक साधु रहते थे। योग-साधना के बारे में मैंने उनसे उपदेश (ह० ले० पृ० २७२) करने की प्रार्थना की थी। उन्होंने इन्कार कर दिया क्योंकि मैं उनकी तन्त्र साधन-प्रणाली स्वीकार करने में असमर्थ था। अब मैं जयपुर से दिल्ली रवाना हो गया।

जयपुर से दिल्ली—दिल्ली के दूसरे ही वातावरण में मैं पहुँच गया था। मालूम हुआ कि दिल्ली नगरी महासमाधि में निमग्न है। एक ब्रह्मचारी ने मुझे पृथ्वीराज का लालकोट* दिखाया। वह अब धूल में रंजित है। योगमाया मन्दिर देखा। पृथ्वीराज इसी साधन भूमि में बैठे हुये योग-साधन की शक्ति सीखते थे। उसी के एकांश में आज बुतखाना है। मुसलमानों ने इसका नाम बुत-खाना या पौत्तलिक भजनालय रखा है। इसके समीप लगभग डेढ़ हजार वर्षों का पुराना धातु-स्तम्भ है। सुना जाता है कि राजा धव ने इसको बनवाया था। पृथ्वीराज के द्वारा निर्मित कुतुब स्तम्भ देखा। असम्पूर्ण स्तम्भ के निर्माण कार्य को कुतबुद्दीन ने पूरा किया था। इसलिए इसका नाम कुतुबमीनार पड़ा। वहाँ से दिल्ली के पुराने किले को देखा। यह ही प्राचीन इन्द्रप्रस्थ है। यहाँ युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का प्राचीन गौरव चिन्ह है। किसी साधु का दर्शन नहीं मिला था। लेकिन यमुना के किनारे भी कई एक साधुओं से भेंट हुई थी। ये लोग भी हरिद्वार के मेले में जाने वाले थे। मैं भी सम्मिलित हो गया था।

दिल्ली में नया अनुभव—अजमेर, मारवाड़, जयपुर किंवा अलवर सभी स्थानों में जनसाधारणों के अन्दर प्रबल रूप से चांचल्य का अनुभव

---

* पत्थरों की बनी चहार दीवारी

हुआ। दिल्ली में इस चांचल्य का अनुभव अत्यन्त अधिक हुआ था। रास्ते में, बाजारों में, दूकानों में, पथचारी यात्रियों में, साधु-संन्यासियों में, धनी गरीबों में या राज-कर्मचारियों में मुख्य रूप से केवल एक ही चर्चा होने लगी कि अब सहन करना कठिन है। अब तो जीवनों को बाजी में रखकर भी स्वदेश और स्वधर्म का उद्धार करना ही चाहिये। हम दस साधु यमुना के किनारे सारे दिन के बाद भोजन कर रहे थे। एक छोटे लड़के ने हम सब को दिखा के अपनी माताजी से कहा "माता जी, हमारा देश और धर्म विदेशी ईसाई अंगरेज और ईसाई पादरियों के अत्याचार और शैतानी के कारण डूब रहा है और हमारे देश के ऐसे लाखों साधु बाबा केवल पेट पूजा में ही व्यस्त हैं। देश और धर्म की रक्षा के बारे में ये लोग कुछ परवाह नहीं करते हैं। इनके लिये पेट ही भगवान् है और भगवान् ही पेट है।" लड़के के इन वाक्यों को सुनकर साधु एक साथ मिल कर लड़के को अभिशाप देने लगे और गाली-गलौच करने लगे। लड़के की माता साधुओं के अभिशाप के कारण भयभीत होकर रोने लगी। मैंने लड़के की माता से विनम्र भाव से कहा—"माताजी! लड़के की बातें सम्पूर्ण सच्ची हैं। आपका लड़का देवदूत-सा मालूम पड़ता है। किन्तु कम से कम इस लड़के की बातों से मेरी आंखें तो बिल्कुल खुल गयीं हैं। लड़के का पैत्रिक परिचय लेने से मालूम हुआ कि उस समय से लगभग ३८ वर्ष पहले इस लड़के के पितामह अलीगढ़ के जमीदार साहसी वीर योद्धा दयाराम हाथरस किले की रक्षा करने के लिये लार्ड हैस्टिंग्स के अविराम बम्बवर्षण के सम्मुख युद्ध करके वीरगति को प्राप्त हुये थे। मैंने लड़के के सिर पर हाथ रख के आशीर्वाद दिया। लड़का भी खुशी के मारे रोने लगा था।

देश पर राहुग्रास—मैं अपने साथी साधुओं के साथ लाल किले के सम्मुख बैठा हुआ हरिद्वार जाने के लिये सोच रहा था। अचानक एक साधु आकर कहने लगे—"आप लोग जाइये, हरिद्वार जाकर स्नान कर शुद्ध बन जाइये। हमारी पवित्र मातृभूमि पर विदेशी राहु ने ग्रास कर लिया, धीरे-धीरे हमारे देश के सुख-शान्ति, शिक्षा-सभ्यता, धर्म-संस्कृति सम्पद्-ऐश्वर्य को भी यह हजम करने लगा है हमारे धर्म को ग्रास करके विधर्मी पादरी हमारे सहज सरल देशवासियों पर ईसामसीह के धर्म को लाद रहे हैं। हमारे स्वधर्मी भाई-बहनों को विधर्मी बना के देश-द्रोही के रूप में बदल देते हैं। स्वदेश को विदेशियों के पंजे से मुक्त करना जितना

कठिन है उससे हजारों गुणा कठिन है विधर्म के पंजे से स्वधर्मियों को मुक्त करना। जब तक स्वदेश और स्वधर्म पर राहु और केतु का ग्रास रहेगा, तब तक हम गंगा-स्नान से शुद्ध होने में विश्वास नहीं करते हैं।

इस साधु से मेरी एकान्त में बहुत समय तक बातचीत हुई थी। मेरे मुख से अनुकूल बातचीत सुनकर वह साधु बहुत ही खुश हुआ। आगे जाके मालूम पड़ा कि आप एक मराठी पण्डित साधु के वेश में घूम रहे हैं और इस रूप के करीब एक सौ पण्डित साधुओं के वेश में घूम घूमकर साधुओं में नई प्रेरणा लाने की कोशिश कर रहे हैं। मैं पूर्व निश्चयानुसार अपने साथी साधुओं के साथ हरिद्वार की तरफ रवाना हो गया। निश्चय हुआ था कि हम लोग मेरठ होते हुए हरिद्वार जायेंगे। हम लोग जितने ही आगे बढ़े उतने ही हरिद्वार के यात्री हमारे साथ अधिक संख्या में जुट गये थे। स्वदेश और स्वधर्म के उद्धार के लिये सभी लोग व्यग्र और उत्सुक मालूम पड़े।

दिल्ली से मेरठ—हरिद्वार कुम्भ मेले के यात्री हम सब साधु लोग यथा समय दिल्ली से मेरठ पहुँच गये थे। (ह० ले० पृ० २७७) तीर्थयात्रियों के अन्दर सैंकड़ों गृहस्थ स्त्री-पुरुष भी थे। मेरठ से लगभग चार योजन दूरी पर पांडवों की प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर है। गंगा नदी वहाँ से धीरे-धीरे हटती जा रही है। वहाँ से हम गढ़ मुक्तेश्वर गये थे। वहाँ मन्दिरों की संख्या बहुत है। करीब सौ-शती स्तम्भों के ध्वंसावशेष वहां मौजूद हैं। मेरठ के पास ही परशुराम की जन्मभूमि और जमदग्नि का आश्रम है। ऋषि वाल्मीकि का आश्रम भी वहां ही था। वहां के पुराने आश्रमों में योग-सिद्ध पुरुषों का संधान नहीं मिला।

करुण-दृश्य—हम में से बहुतों को पता लगा कि इन तीर्थयात्रियों के अन्दर बहुत सरकारी कर्मचारी और बनावटी वेशवाले राजकर्मचारी गुप्त रूप से रहते हैं। सीधे-साधे यात्रियों को इस बात का पता नहीं था। सरल यात्रियों के अन्दर (ह० ले० पृ० २७८) गुप्तचर राजकर्मचारी अंग्रेज वणिक्-शासन के बारे में प्रसंग शुरू कर देते थे। तीर्थ यात्रियों के पीछे-पीछे कभी-कभी घुड़-सवार श्वेतांग सैनिक भी तीर्थ-यात्रियों की रक्षा के बहाने से आते थे। तीर्थ-यात्रियों के अन्दर कभी-कभी अंग्रेज वणिक्-शासकों के अनाचार, अत्याचार और स्वैराचारों के बारे में तरह-तरह की चर्चायें चलती थीं। जासूस गुप्तचर लोग ही इन चर्चाओं के प्रवर्तक हुआ

करते थे। एक दिन देखा गया—एक व्यक्ति को सरकारी कर्मचारियों ने पकड़ लिया। उसकी पत्नी एक छोटे शिशु बच्चे को गोदी में लिये हुए किसी गोरे सरकारी कर्मचारी के पैरों पर गिर पड़ी। लेकिन श्वेतांग कर्मचारी ने शिशु बच्चे को माता की गोदी से छीन कर ले लिया और गंगा के तीव्र स्रोत में फेंक दिया। पुत्र-शोक से करुण-चिल्लाहट के साथ माता गंगा में कूद पड़ी। पिता भी गंगा में कूदने के लिए तुरन्त तैयार हो गया। लेकिन दो सिपाहियों ने बन्दूकों के हत्थों से उसको मारते-मारते अचेत कर दिया। गोद का शिशु पुत्र और शिशु की माता गंगा में बहती हुई कहां चली गयी—भगवान् ही जानते हैं। सरकारी कर्मचारी के पीछे बन्दूक-धारी पलटन बहुत संख्या में थी। गृहस्थ तीर्थयात्री चारों तरफ भाग गये थे। अंगरेजी शासन और प्रजा-शासन के बारे में मेरे जीवन में यह पहला प्रत्यक्ष अनुभव था। हम सब साधु लोग दलबद्ध न रहकर चार-चार पांच-पाच करके एक साथ रहकर हरिद्वार की तरफ चलने लगे। हम सब साधुओं के दिमाग में यह चिन्ता बहुत प्रबल और क्रियाशील हो रही थी :—

"दुःखिनी, पराधीन भारतमाता की सेवा में हमको आयुष्काल और शक्ति के अनुसार कुछ न कुछ अंश समर्पित कर देना चाहिए।"

(ह० ले० पृ० २८०) किन्तु गुप्तचर कर्मचारियों के सन्देह करने के डर के मारे कोई साधु किसी साधु से बातचीत करना निरापद नहीं समझता था। इस प्रकार की घटनाओं को और इन सबका प्रतिविधान सोचते हुये हम सब तीर्थयात्री विभिन्न दलों में विभक्त होकर हरिद्वार की तरफ यात्रा करने में व्यस्त थे। कभी-कभी हम सब पुराने जान-पहचान के साधु लोग किसी-किसी निरापद स्थान पर एकत्र हो जाते थे और देश की शोचनीय दुर्दशा पर विचार करते थे।

देश की इन स्थितियों को देखते हुए, गेरुवे कपड़े पहनकर, अपनी-अपनी मुक्ति और पारमार्थिक कल्याण के लिए देश भर घूमना, बहुत ही लज्जाकर और ग्लानिकर मालूम होने लगी। लेकिन देशवासी जन-समुदाय को कैसे सचेत और दलबद्ध किया जाये--(ह. ले. पृ. २८१) यह विचार दिमाग में आनेल गा।

भेलोर में देशी फौजों पर अत्याचार—

दक्षिण भारत के किसी वृद्ध साधु ने कहा कि गवर्नर जनरल कार्नवालिस के बाद अस्थायी रूप से दो-एक वर्ष के लिये उसी पद पर

अस्थिर रूप से जार्ज वार्ले आये थे। करीब पचास वर्ष पूर्व की बाते हैं। देशी सैन्य पर कैसे-कैसे अत्याचार होते थे और आज भी होते हैं, वे वर्णनातीत हैं। मद्रास के गवर्नर उस समय लार्ड वेंटिक थे। उन्हीं की अनुमति लेकर सेनापति जन्फ्रैडक ने फौजी पौशाक के बारे में अचानक आदेश जारी कर दिया था—

"सब फौजों को कम्पनी की दी हुयी नयी टोपी पहननी पड़ेगी। उस टोपी का ऊपर का भाग गाय के चमड़े से और नीचे का भाग सूअर के चमड़े से बना हुआ था। सभी को दाढ़ी और मूंछ सफा कर देने पड़ेंगे; कोई कपाल में तिलक, चन्दन, भस्मादि के छाप नहीं लगवा सकेगा, सिर पर कोई चोटी नहीं रख सकेगा, कोई हिन्दू या मुसलमान निर्दिष्ट विश्राम के समय से अतिरिक्त समय में सन्ध्या उपासना या नमाज के लिये समय नहीं दे सकेगा, गले में कोई जनेऊ या माला नहीं पहन सकेगा और विश्राम के समय से अतिरिक्त किसी समय में भी भगवान् या खुदा ताला का नाम उच्चारण नहीं कर सकेगा।"

भेलोर-विद्रोह—इस आदेश पर करीब सब ही हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों के अन्दर जाति और धर्म के ऊपर आघात होने के कारण विक्षोभ पैदा हो गया था।

सर्वप्रथम इस अन्याय और धर्म-विघातक आदेश के विरोध में भेलोर के सिपाहियों ने विद्रोह की घोषणा की थी। उन लोगों ने उस आदेश को पालन करने से इन्कार कर दिया था। इन सिपाहियों को सामरिक कानून के अनुसार फौजी नियम-शृंखला तोड़ने के अपराध के कारण गोलियों से मृत्यु-दण्ड दिया जाये—ऐसी राय दी गयी थी। (ह.ले. पृ. २८३) साथ-साथ ही देशी सिपाहियों ने ११३ अंगरेज फौजियों को और दो सामरिक कर्मचारियों को थोड़े समय के अन्दर ही गोलियों से (ह. ले. पृ. २८४) मार दिया था। उन विद्रोहियों को दमन करना कठिन था। आर्कट से विशाल सैन्य वाहिनी बुलवा कर अमानुषिक रूप से विद्रोह का दमन किया गया।

विद्रोह-दमन का नमूना—विद्रोहियों को हथकड़ी और बेड़ी लगवाके दो दिन भूखे और नंगे रखा गया था। तीसरे दिन विद्रोही सैन्यों के नेताओं के जीवित शरीर से चमड़े निकालकर उन चर्म-हीन मृत देहों को ठेला-गाड़ी पर रखकर सैन्यावास में जलूस निकाला गया था। मृत अप-

राधियों के अन्दर हिन्दु और मुसलमान दोनों ही थे। इस रूप से भेलोर का विद्रोह दमन किया गया था। इसके बाद ही वेटिक और फ्रेड्रिक को स्वदेश जाने का आदेश मिल गया था। हमारे तीर्थ यात्रियों के अन्दर भेलोर-विद्रोह के बारे में सुनाने वाले व्यक्ति के मामा दंड-प्राप्त फौजी नेताओं के अन्दर शामिल थे।

बारीकपुर-विद्रोह—बंगाल-नदीया के एक वृद्ध साधु ने कहा कि भेलोर की-सी अनुरूप घटना आज से करीब बीस वर्ष पहले बंगाल के बारीकपुर में भी घटी थी। वहाँ के सैन्यावास में सैन्यों को झट ब्रह्मदेश में युद्ध करने के लिए आदेश मिला था। इससे उनके अन्दर विक्षोभ पैदा हुआ। उनको मासिक वेतन भी बहुत ही कम दिया जाता था। इसके उपरान्त समुद्र पार होके विदेश जाने से उनके खाद्याखाद्य का विभेद नहीं रहेगा और वे लोग धर्म-भ्रष्ट और जाति-भ्रष्ट हो जायेंगे। घर से भी ये लोग निकाले जायेंगे। सिपाही लोगों में सम्मिलित रूप से करीब दो सौ फौजियों ने सरकार से प्रार्थना की थी—हम सब लोग जाति रक्षा, धर्म-रक्षा, आचार-रक्षा के लिए ही समुद्र के उस पार ब्रह्म देश में युद्ध के लिये नहीं जाना चाहते हैं। हमारे प्रति वहां जाने के लिये जो आदेश दिया गया है उसको खारिज कर दिया जाये।

बारीकपुर से कलकत्ता केवल दो योजन की दूरी पर है। वहां सामरिक ढंग से उत्तर आ गया था। तदनुसार सैन्यावास के अन्दर कुचकावाच के मैदान में सब ही प्रार्थनाकारियों को बेड़ी और हथकड़ी लगवा के खड़े करके सब ही को एक साथ गोरे सैन्यों से गोलियों से मरवा दिया। इनके शव देहों को सप्ताह भर गंगा नदी के तीर पर प्रदर्शनी के रूप में रखा। मांसाशी पशु-पक्षियों ने शवों के मांस को खा लिया। पड़े रहे केवल सैंकड़ों कंकाल। उस कंकाल-राशि को गंगा नदी में फेंक दिया। शाम को हर रोज जनता हटायी जाती थी। मृत-व्यक्तियों के बन्धु-बान्धव लोग दूर-दूर से शवों की देखने के लिए आते थे। मृत, गलित, खंड-खंड मांस राशियों के अन्दर से अपने आदमियों को पहचानना असम्भव था। सन्ध्या से पहले ही जनता को गंगा के किनारे से हटाने के लिए गोरे सैन्य लोग घोड़े पर सवार होके आते थे। जनता हटने में देर करती तो बन्धु-बान्धवों के शोक के कारण रोती हुई जनता पर बन्दूकों से गोलियाँ छोड़ते थे। इन गोलियों से बहुत संख्या में पुरुष, स्त्री, शिशु और पथिक भी घायल होकर मर जाते थे।

सौ वर्षों का शासन—सारे देश भर में विदेशी शासन का हाल सुनते हुए हम सब कुम्भ मेला के यात्री लोग धीरे-धीरे हरिद्वार की तरफ पैदल जाने लगे। पूरे देश का हाल सभी की ज्ञान दृष्टि के सम्मुख आने लगा। कोई सुखी नहीं है। सब कोई अंगरेज-शासन से दुःखी हैं, यह मालूम होने लगा। जनसाधारण के (ह० ले० पृ० २८७) इन दुःखों के कारण एक नहीं बहुत हैं। सौ वर्षों के अन्दर देश की धर्म-नीति, सामरिक नीति, अर्थ नीति, शासन नीति, और राजनीति उलट गयी है। विभिन्न प्रकार की दुर्नीति ने समाज के शरीर को पंगु और असार कर दिया है।

प्रजा-विद्रोह का आभास (ह. ले. पृ. २८७)

आबू शैल-शिखर से हरिद्वार तक पैदल आते समय विभिन्न स्थानों के सैकड़ों आबाल-वृद्ध, नर-नारियों से वार्तालाप करने का मुझे मौका मिला था। मालूम पड़ता था कि प्रजा-जनसाधारण के अन्दर अपने स्वदेश और स्वधर्म को रक्षा करने के लिये प्रबल प्रचेष्टा हो रही है। लगभग सौ वर्ष पहले के "पलासी के युद्ध" का बदला लेने के लिये करीब-करीब सब कोई तैयार हो रहे हैं। इनमें धनी, गरीब, राजा-प्रजा, सरकारी-बेसरकारी साधु संन्यासी, भिखमंगे-कंगाल तक सब कोई शामिल थे। जान देने के लिये भी सैकड़ों पुरुष तैयार हो गये थे।

गुप्त समितियों की स्थापना—करीब सब ही शहरों में गुप्त समितियां कायम हो गयी थीं। गुप्त प्रचार-कार्य और संगठन भी चालू हो गये थे। मन्दिर और मसजिदों में गुप्त परामर्शों के कार्य सुचारु-रूप से चलते थे। खास खास आदमियों के घरों में बाकायदा कार्य-केन्द्र स्थापित हो गये थे। क्रान्तिकारी नेता लोग गम्भीर रात्रियों में आलोचनार्थ समवेत होते थे। खास-खास समाचारों को खास-खास स्थानों में भेजने के गुप्त पत्रवाहक दौड़ा करते थे। क्रान्तिकारी लोगों में आपस में वार्तालाप के लिये सांकेतिक और गुप्त भाषाओं का प्रयोग होता था। गुप्त समितियों के कवियों के रचित स्वदेश और स्वधर्म-भक्ति मूलक संगीतों के द्वारा भिख-मंगे लोग भीख माँगते थे। वीर पुरुषों की जीवनियों की कहानियाँ कविताकार से प्रचारित होती थीं। (ह. ले. पृ. २८९) हाट-बाजारों में प्रचार-पत्र और प्राचीर-पत्रों का वितरण होता था।

क्रान्ति की अग्नि शिखा—देश भर में इस प्रकार की गम्भीर स्थिति और वातावरण देखने से मालूम होता था कि अति निकट भविष्य में ही

किसी न किसी समय क्रान्ति की अग्निशिखा प्रबल और व्यापक रूप से प्रज्वलित हो जायेगी और फैल जायेगी। प्रजा-विद्रोह के होमानल से सर्व प्रकार के अन्याय, अधर्म, अत्याचारों के पूंजी-भूत सब जंजाल एक साथ जल कर अति अल्प समय के अन्दर ही स्वाहा हो जायेंगे। अंग्रेज सरकार को यह सब मालूम होने पर भी केवल बन्दूकों के बल पर यह स्थिति निश्चिन्तरूप से उपेक्षित की गयी थी।

हरिद्वार में❀

आबू पर्वत से आये हुये हम सब साधु-संन्यासी यथासमय हरिद्वार में पहुंच गये थे। हमारे साथ रास्ते में जितने गृहस्थ यात्री आये थे, हम ने सब ही को अलग कर दिया था। मैंने स्वयं को भी सब संन्यासियों से अलग कर लिया था। कुम्भस्नान की तारीख से बहुत दिन पहले ही तीर्थ यात्री लोग सैकड़ों हजारों और लाखों आने लगे। हरिद्वार विराट नर-समुद्र में परिणत हो गया था। यह मेरा पहली बार हरिद्वार आना था। हम कुम्भ-स्नान से बहुत पहले ही हरिद्वार पहुंच गये थे। निश्चित रूप से सब ही जगह घूम २ के सब कुछ अनुभव कर लिया था। सिद्ध योगी साधकों का अनुसन्धान करना ही मेरा मुख्य कार्य था।

आशय:—हिमालय के चारों धाम—केदार, बदरी, गंगोत्तरी और यमुनोत्तरी जाने के रास्ते हरिद्वार से ही शुरू होते हैं। हरिद्वार में पांच महातीर्थ है—गंगाद्वार, कुशावर्त, विल्वकेश्वर, नील पर्वत और कनखल। योगसाधना और योगियों के संगत में रहना—इन दोनों कार्यों के लिये मैंने नील पर्वत को चुन लिया था। तीर्थयात्रियों की भीड़-भाड़ वहां बहुत कम है। वह स्थान करीब एक क्रोश चढ़ाई पर है। इसलिये वह स्थान एक-सा दुर्गम ही है। हम वहां अधिकांश समय साधना में ही बिताते थे। अवशिष्ट समय योगियों की संगत में, साधना के अनुशीलन करने में लग जाता था। बाहर के दर्शनार्थी हमारे खाने के लिये जो कुछ भेज देते थे उससे मेरा गुजारा हो जाता था। किसी रोज अगर कुछ भी नहीं मिला

❀ संवत् १९११ के साल के अन्त में हरिद्वार के कुम्भ के मेले में आके बहुत साधु-सन्न्यासियों से मिला और जब तक मेला रहा तब तक चण्डी के पहाड़ के जंगल में योगाभ्यास करता रहा। —पं० भगवद्दत्त जी लिखित जन्म चरित्र पृ० २४।

हो तो उस रोज केवल पानी पीकर ही रह जाता था। यह आदत मुझे बहुत पहले से ही आ गई थी।

क्रान्तिकारी नेताओं का शुभागमन

नील पर्वत में मैंने वहां चण्डीस्थान के सन्न्यासी रुद्रानन्द से सुना था कि भारत-व्यापी प्रजा-जागरण और विप्लव-प्रचेष्टा के और भविष्यत् क्रान्ति-युद्ध के नायक, नेता और कर्णधार लोग अति शीघ्र साधु-संन्यासियों के दर्शन और देश की परिस्थिति समझाने के लिये हरिद्वार मेला में आ रहे हैं। ये लोग नील पर्वत में भी आयेंगे। मेरे अन्दर भी उनके दर्शन के लिये और फिर उनसे वार्तालाप करने के लिये प्रबल इच्छा पैदा हो गई थी।

अब तीन रोज बाद ही पांच अज्ञात नामा और अपरिचित सज्जन हमारे अति संकीर्ण कुटीर के सम्मुख आ कर पूछने लगे—"आबु-शैल से आये हुये महात्मा जी कहाँ हैं? हम लोग उनसे मिलना चाहते हैं।" मैंने परिचय दे दिया था। उन लोगों ने भी अपने २ परिचय दिये थे।

उनमें **प्रथम** थे (ह. ले. पृ. २९१) द्वितीय बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र धुन्धु पन्थ (नाना साहब), **द्वितीय** थे उनके बन्धु अजीमुल्ला खां, **तृतीय** थे उनके भाई बाला साहब, चतुर्थ थे तात्या टोपे और पंचम थे जगदीशपुर के जमोदार बा० कुंवर सिंह।

नानासाहब के प्रश्न का उत्तर—ये पाँच सज्जन प्रणिपात करके मेरे सम्मुख बैठ गये थे।

नाना साहब ने कहा—"महात्मा जी! विदेशी और विधर्मी अंग्रेज आकर स्वदेश और स्वधर्म को धीरे-धीरे ग्रास कर रहे हैं। इस को किसी तरह से निवारण करना चाहिये, और किस तरह से रोकना चाहिए—इसके बारे में आपकी राय क्या है? हम लोग हरिद्वार में आये हुए खास-खास साधु-सन्न्यासियों से इस बात पर अभिमत लेते हैं।"

मेरा अभिमत (ह. ले. पृ. २९२)

किसी विदेशी राज को किसी विदेश पर हकूमत चलाने का हक नहीं है। अंग्रेज विदेशी हैं। इसलिये विदेशी भारत पर उसका शासन चलाने का अधिकार नहीं है। विदेशी शासक विदेशी शासितों को शोषण करके

ही अपनी समृद्धि करते हैं, अंग्रेजों की समृद्धि भारत के शोषण पर ही है। किसी वन्य बर्बर असभ्य देश पर किसी सुसभ्य जाति का शासन उस देश के कल्याण के लिये हो सकता है। भारत असभ्य देश नहीं है और अंग्रेज भारतीय से ज्यादा सुसभ्य भी नहीं हैं। केवल वे हिंस्र पशु की तरह जबरदस्ती से शासन चला रहे हैं जिस को भारत वर्ष नहीं चाहता है। भारत जैसे न्यायप्रिय सुसभ्य और पुराने देश को पद दलित करना महापाप है और इसको सहन करना और अधिक महा पाप है, भारत जब मन-प्राण से बोलेगा हम अंग्रेज को नहीं चाहते हैं तब ही अंग्रेज भारत-शासन छोड़ने के लिये बाध्य होगा।

बाला साहब के प्रश्न का उत्तर

द्वितीय सज्जन बाला-साहब ने जिज्ञासा की —"हमारे अपने दोष या त्रुटि क्या हैं जिससे हमारी ऐसी दुर्दशा है ? इस पर आपका क्या अभिमत है ?

मेरा अभिमत

युधिष्ठिर-दुर्योधन, जयचन्द-पृथ्वीराज, मानसिंह-प्रतापसिंह में जो भ्रातृकलह—अल्प विरोध था वह ही भारत के सर्वनाश का मुख्य कारण है। आगे चलकर हम देखते हैं—जब मुगल साम्राज्य का पतन हुआ तब मराठा (ह. ले. पृ. २६६) और सिख—दोनों की शक्ति पृथक्‌रूप से या समवेत रूप से भारतवर्ष पर शासन चलाने के लिये यथेष्ट ही थीं। लेकिन दोनों के अन्दर आत्मविरोध के कारण से भारत अंग्रेजों के हाथों में चला गया। यह अनैक्यता और आत्म-विरोध ही हमारी दुर्दशा का कारण है।

अजीमुल्ला खां के प्रश्न का उत्तर

तृतीय सज्जन अजीमुल्ला खां ने कहा—'महात्मा जी ! भारत के व्यापक प्रजा-विद्रोह के बारे में आपका क्या अभिमत है ?

मेरा अभिमत

मैंने जहाँ तक देखा है यह भविष्यत् के गणविद्रोह का आभास मात्र ही है। यह विद्रोह साम्प्रदायिक या संकीर्ण नहीं है। इसमें धनी-गरीब, कृषक-प्रजा, शिक्षित-अशिक्षित सब कोई सम्मिलित है। यह गण-जागरण भारत को नयी जीवनी शक्ति से संजीवित करेगा। धर्म की

भित्ति पर यह आन्दोलन जब तक रहेगा इसका भविष्यत् तब तक उज्ज्वल है। शिशु और नारियोंपर जब तक आघात नहीं पहुंचेगा तब तक इसका स्वरूप धार्मिक ही रहेगा इस गण-जागरण में हिन्दु-मुसलमान सम्मिलित हो रहे हैं। दिल्ली के बादशाह और (बिठूर) के पेशवा—दोनों ही इसमें शामिल हो गये हैं। अगर हिन्दू-जनता अंग्रेज को हटकर पेशवा को राजा बनाना चाहे या मुसलमान जनता अंग्रेज को हटाकर दिल्ली के बादशाह को ही भारत का बादशाह बनना चाहे तब तो गण-जागरण व्यर्थ बन जायेगा। पेशवा और बादशाह में प्रतिद्वन्द्विता ही है।

(ह. ले पृ. २६६) **पंजाब**—का प्रबल पराक्रांत सामरिक सिख-सम्प्रदाय शायद पेशवा-परिचालित इस आन्दोलन में भाग नहीं लेगा, बल्कि इसमें बाधा ही डालेगा। क्योंकि अंग्रेज और अफगान युद्ध में पेशवा ने दूसरे के राज्य हड़पने के लिए अंग्रेज को पांच लाख रुपये ऋण-स्वरूप दिया था। इसके बाद ही अंग्रेज और सिख-युद्ध में पेशवा ने अंग्रेज पक्ष को एकहजार पदातिक सेना और एक हजार अश्वारोही सैन्य सहायता के लिये भेज दिये थे। (२६७ ह.ले) पेशवा के इस गर्हित आचरण को शायद सिख लोग इतनी जल्दी भूलेंगे नहीं।

नेपाल के सम्बन्ध में भी बात एक सी ही है। नेपाल की राजधानी के रक्षार्थ नेपाली लोगों ने अंग्रेजों के साथ प्राणपण से युद्ध किया था। भारतीय साधारण प्रजा से उस समय कुछ भी मदद नहीं मिली थी। नेपाली लोगों ने इस बात को भुलाया नहीं है।

फिर भी इस भविष्य गणयुद्ध होने का परिणाम शुभ है। पलासी-युद्ध से एक शत वर्ष बाद यह गण-युद्ध होने वाला है। फिर आगे एक शत वर्ष भर युद्ध चलता ही रहेगा। तब युद्ध-जय अवश्यम्भावी होगा। बहुत कुछ आहुतियाँ अब भी बाकी हैं।

तात्या टोपे के प्रश्न का उत्तर

चतुर्थ सज्जन तात्या टोपे ने (ह. ले. पृ. २६८) पूछा—"महात्मा जी! भारतवर्षव्यापी जिस प्रजा-विद्रोह का आभास आपकी नजर में आ गया है। उसके कारणों के बारे में आपका क्या अभिमत है?

मेरा अभिमत—इस सम्भाव्य प्रजा-विद्रोह के मूल कारणों को हम भिन्न-भिन्न श्रेणियों से विभक्त कर सकते हैं—धर्म-नीतिक, समाज-नीतिक राज-नीतिक, अर्थनीतिक, युद्ध-नीतिक और प्रत्यक्ष।

(१) **धर्म-नीतिक कारण**—भारत के करोड़ों हिन्दू-मुसलमानों को नरक से बचाने के लिये और सीधे स्वर्ग को भेजने के लिये हजारों श्वेतांग पादरी विदेशों से भारत-भूमि में—ऋषि-मुनियों के देश में आये हैं। इनका पालन-पोषण और अमीरी, भारत के गरीब प्रजाओं के कष्ट-प्रदत्त राजस्व से होती है। इनकी राजकीय स्थिति और प्रभाव जज-मजिस्ट्रेटों से कम नहीं है। गरीब-दुःखी, असहाय-अनपढ़ और भोले-भाले लोगों को आर्थिक प्रलोभन से ईसाई बनाना ही इनका प्रधान कार्य है। अस्पताल, जेलखाने, सरकारी दफ्तर, विचारालय, पद पर नियुक्ति आदि विभागों में इनका असीम प्रभाव है। हिन्दू धर्म और मुसलमान धर्म के बारे में कटूक्ति और निन्दावाद (ह० ले० पृ० ३००) का प्रचार करना ही इनका धर्म-प्रचार है। अकाल-पीड़ित स्थानों में और गरीब गांवों में आर्थिक सहायता के बल पर हिन्दू-मुसलमान नवजवानों को ईसाई बनाना ही इनका उद्देश्य है। बड़े-बड़े मेधावी कवि साहित्यिक, वैज्ञानिक नव-जवानों को पादरियों ने भारतद्रोही बना दिया है। यह असहनीय है।

(२) **समाज-नीतिक कारण**—करीब एक सौ वर्ष पहले से ही सैंकड़ों, हजारों अंगरेज व्यवसायी, राजकर्मचारी, धर्म-प्रचारक भारतीयों के संस्पर्श में आये हैं लेकिन इन्होंने अपने को भारतीयों से सर्वथा अलग करके रखा है। (ह० ले० पृ० ३०१) सब कोई अपने को प्रभु शासक समझ करके सभी को शासित रूप में देखते हैं। नेटी, नीगार, काले (कृष्णांग), ईडियट, शूअर, ब्लाडी, व्याष्टार्ड, फूल, डौग, बिच आदि शब्द इन्होंने यहाँ के रहने वालों के लिये आविष्कृत किये हैं और यत्र-तत्र प्रयोग करते हैं।

इनके लिये बड़ौदा के गायकवाड़ और हैदराबाद के निजाम देशी राजे, राजा राजेन्द्र लाल मित्र और सत्यव्रत सामश्रमी देशी पण्डित, डा० महेन्द्र लाल सरकार, गंगाधर कविराज ये सब देशी चिकित्सक हैं; राजा राममोहन और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी देशी संस्कारक हैं और वेद-उपनिषद् भी देशी धर्म-ग्रन्थ हैं।* उनके लिए भारत के सब (ह. ले. पृ. ३०२) कोई और सब कुछ घृणा के पात्र और घृणा की वस्तु हैं। इससे

---

* मूल में देशी शब्द हैं। लेखकों ने भाव समझकर बंगला में उसके पर्याय वाची अंग्रेजी शब्द लिखे हैं।—स०

अंगरेज और भारतीयों के अन्दर महान् व्यवधान कायम हो गया है, जिसकी प्रतिक्रिया के रूप में भारतीय जन-साधारण के अन्दर प्रबल विद्रोह का भाव उत्पन्न हुआ है।

(३) **राजनीतिक कारण**—अंगरेजों ने राज्य-विस्तार के लिये युद्ध-नीति ग्रहण की है और जिससे पंजाब और पेगु (ब्रह्म देश) पर दखल कर लिया है। सिक्किम को एकांश युद्ध-नीति से ही लिया गया है। स्वत्व-विलोप नीति से सतारा, सम्बलपुर, झांसी, भागल, उदयपुर, नागपुर, जैतपुर, करौलि, वगैरह राज्यों पर भी दखल कर लिया है। कई एक राज्यों के राजपरिवारों को भत्ता देने का वचन दिया गया, फिर उसको बन्द भी कर दिया गया। राजप्रासाद लुंठन किया गया, स्त्रियों को अपमानित किया गया। अराजकता के बहाने बनाकर भी कई-एक राज्यों का ग्रास किया गया। इन सब जबरदस्ती और दस्युवृत्तियों के कारण अत्याचार और अविचार के कारण जन-साधारण का मन विषाक्त, घृणा, विद्वेष और प्रतिहिंसा-परायण बन गया है। इसको सहन करना असम्भव हो गया है। प्रजा-विद्रोह का यह मुख्य कारण है।

(४) **अर्थनीतिक कारण**—अंगरेज-शासन के एक सौ वर्षों के अन्दर देश से अपरिमित सोना, चांदी, मणि-माणिक्य-रत्नादि, सुप्रसिद्ध कोहिनूर स्यमन्तक आदि अमूल्य मणि आंग्ल-देश में भेज दिये गये। यन्त्र शिल्प के प्रवर्तन से कुटीर-शिल्प, स्वदेशी शिल्पों की जगह विदेशी शिल्पों की आमद अधिक रूप से हुई है। जिस के कारण देश की समृद्धि विनष्ट हो गयी और अन्नाभाव दुर्भिक्षादि बार-बार आने लगे। प्रजाओं के लुण्ठन के लिये घर-घर चौकीदारी-टैक्स, शिक्षा-कर, पथ-कर, जल-कर, आय-कर, शिल्प-कर और गवादि पशुओं के भूमि-चारणकर आदिकों की क्रमवृद्धि प्रचलित हुई है। जन-साधारण अन्न-वस्त्रादि के अभाव से अर्ध-मृत हो रहा है। प्रजा-विद्रोह अन्न-वस्त्राभाव के कारण स्वाभाविक गति से ही आ रहा है।

(५) **युद्ध-नीतिक कारण**—अनपढ़ मूर्ख जन-साधारण को शिक्षा-दीक्षा से वंचित करके बाल्य-किशोर यौवन अवस्था में अधिक वेतन के प्रलोभन से युद्ध-शिक्षा के लिये भेज दिया जाता है। राज्य-विस्तार के ये लोग ही परम सहायक हैं। इनके प्रति विदेशी सामरिक कर्मचारियों का व्यवहार अमानवोचित है। इनके वेतन से पच्चीस गुणा अधिक वेतन अंगरेज मामूली सैनिकों को मिलता है। जब इच्छा हो, जहाँ इच्छा हो युद्ध के लिये ये लोग भेजे जाते हैं। गन्तव्य स्थान का नाम तक भी नहीं

बताया जाता है। युद्ध-भूमि में मृत्यु होने पर घर में समाचार भी नहीं पहुँचता है। "सामरिक जाति" यह नाम रखकर स्वास्थ्यवान् (ह. ले. पृ. ३०५) तरुण एकमात्र पुत्र को भी परवाने के बल पर पकड़ के सामरिक कर्मचारी ले जाते हैं। छावनी में धर्म कृत्य करना, धार्मिक चिन्हादि को धारण करना अवैध और निषिद्ध है। इस पर बिन्दुमात्र आपत्ति करने से भी सामरिक विचार के अनुसार गोलियों से मृत्यु-दण्ड दिया जाता है। आज से पचास वर्ष पहले भेलोर में और तीस वर्ष पहले बारीकपुर में इस प्रकार के अत्याचार और सामरिक दंडों का विधान हुआ था। दण्ड-प्राप्त सैन्यों का प्राप्य बाकी वेतन घर में नहीं भेजा जाता है। प्राणदंड का सम्वाद तक भी नहीं भेजा जाता है। बहुत रोज तक घर में पत्र आदि नहीं आने से अन्दाजा किया जाता है कि सामरिक कानून से प्राण-दण्ड मिला होगा। इस हालत को सहन करना कठिन हो गया है। प्रजा-विद्रोह का यह भी कारण है।

(६) **प्रत्यक्ष कारण** (ह.ले.पृ.३०६)—कृष्णांग जातियों के प्रति प्रतिदिन और हमेशा जो व्यवहार सब ही जगह देखे जाते है पशुओं के प्रति भी ऐसा निर्दय और निर्लज्ज व्यवहार नहीं देखा जाता है। जोकि ज्यादा रोज सहन करना कठिन है। इन सब कारणों से प्रजा-विद्रोह अवश्यम्भावी मालूम हुआ है।

श्री कुंवर सिंह के प्रश्न का उत्तर :—

पंचम सज्जन श्री कुंवर सिंह ने पूछा —"स्वामी जी महाराज! युद्धों में जय अथवा पराजय अनिश्चित होती है। आपसे पूछता हूं, "हमारा यह प्रजा-जागरण या गण-युद्ध सफल होगा या विफल होगा?"

मेरा अभिमत—स्वतन्त्रता-युद्ध कभी विफल नहीं होता है। भारत धीरे-धीरे सौ वर्ष के अन्दर परतन्त्र बन गया है। इसको स्वतन्त्र बनाने में और सौ वर्ष बीत जायेंगे। भारत पूर्ण स्वतन्त्र बनकर फिर जगत् पर (ह. ले. पृ. ३०७) अपने गौरव को प्रकाशित करेगा। इस स्वतन्त्रता-प्राप्ति में बहुत से अमूल्य जीवनों की आहुतियाँ डाली जायेंगी। मैं हरिद्वार के कुम्भ मेले में दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आया हूँ।

प्रधान उद्देश्य—योग-सिद्ध साधकों का संधान करना। इससे मेरे पारमार्थिक कल्याण की प्राप्ति होगी।

गौण उद्देश्य—कुम्भ मेले में भारत के और तिब्बत के सब ही साधु और महन्त लोग अपने-अपने शिष्य-सम्प्रदायों के साथ समवेत होते हैं।

भारत में लाखों-लाखों साधु हैं। इनके अन्दर संगठन नहीं है। सब को अपने-अपने गुरुओं के आधीन संगठित करना जरुरी है। मैं सब ही गुरुओं से मिलूंगा। देश की इस दयनीय स्थिति में सुधार के लिये मैं इनको प्रेरणा दूंगा। आप लोगों का प्रजा-विद्रोह प्रत्यक्ष रूप में रहेगा और (ह. ले. पृ. ३०८) इसका फल भी प्रत्यक्ष ही होगा। क्योंकि आप लोग मुख्य रूप से प्रत्यक्ष जीवन बिताते हैं। लेकिन साधु लोग अपार्थिव और पारमार्थिक जीवन बिताते हैं इसका स्वरूप और फल सम्पूर्ण अप्रत्यक्ष हैं। अप्रत्यक्ष फल के लिये साधु-सन्न्यासियों को संगठित करना बहुत ही कठिन है। इनकी संख्या कई एक लाख हैं। मैं इन त्यागी साधुओं को संगठित करने के लिये प्राण-पण से कोशिश करुंगा।

भारत की इस दुर्दशा को हटाने से भारत इतने विराट् और विशाल जनबल को प्राप्त हो जाये तो यह सौभाग्य की बात है। भारत के प्रजा-विद्रोह और साधु-संगठन के सफल होने से देश का सर्वाङ्गीण कल्याण होगा, इसमें सन्देह नहीं है। साधु-संगठन की परिकल्पना को छोड़ देने से आज ही मैं आपके साथ प्रजा-विद्रोह में शामिल हो सकता हूं। मैं हरिद्वार कुम्भ मेले से (ह० ले० पृ० ३०६) मानसरोवर, कैलाश और तिब्बत की तरफ योगी-साधुओं के सन्धान में जाना चाहता हूं। लाखों-लाखों साधु सन्न्यासी हिमालय के विभिन्न ऋषि-पल्लियों में और पर्वत-कन्दरों में रह कर योग-साधना करते हैं और कोई-कोई साधना के आसनों में बैठे हुए जीवनों को छोड़ देते हैं।

पांचों सज्जनों ने एक ही स्वर से मुझसे अनुरोध किया कि मैं योगियों के संधान में और साधुओं के संधान में तत्पर रहूं। प्रजा-विद्रोह के कार्य में सैंकड़ों-सहस्रों आदमी पेशावर से कलकत्ते तक और मेरठ से कर्नाटक तक नियुक्त हुए हैं। लेकिन साधु-संगठन के कार्य में कोई भी नजर नहीं आता।

कमल पुष्प और चपाती—अजीमुल्लाखां ने प्रश्न किया था 'हमारी यह प्रजा-विद्रोह की वाणी किस रूप से और द्रुत सामरिक और असामरिक जनता में बहुत ही चुपचाप प्रचारित हो सकती है। (ह. ले. पृ. ३१०) इसके बारे में आप से उपदेश चाहते हैं।

मैंने इस कार्य के बारे में बहुत ही प्राचीन सनातन पद्धति को बतला दिया। सामरिक जनता में प्रचार के लिये कमल पुष्प और असामरिक जनता में प्रचार के लिये चपातियों का व्यवहार होता है। किसी

सैन्यावास में किसी एक सैन्य के पास कमल पुष्प को हाथ में देकर व्यापक युद्ध-घोषणा की तारीख बोल दी जाये तो निःशब्द से एक हाथ से दूसरे हाथों तक कमल पुष्प भी चलता रहेगा और क्रान्ति की वाणी का भी प्रचार होता रहेगा। इस से किसी को सन्देह भी पैदा नहीं होगा। इस रूप से एक सैन्यावास से दूसरे सैन्यावास तक संवाद निःसन्दिग्ध रूप और आराम से सम्वाद पहुँच जायेगा।

असामरिक जनता में प्रजा-विद्रोह की वाणी उसी रूप से प्रचार के लिये किसी गांव में प्रवेश कर किसी व्यक्ति को (ह. ले. पृ. ३११) व्यापक विद्रोह की ठीक तारीख बोल देने के बाद एक व्यक्ति के हाथ में चपाती दे देनी चाहिये। उससे एक टुकड़ा लेने के बाद दूसरे व्यक्ति के हाथ तक पहुंचा देना। इस रूप में टुकड़े होकर चपाती समाप्त हो जाने से अगले व्यक्ति नई चपाती बनवाके उसी रूप से दूसरे हाथों में दे देंगे। इस प्रणाली से गांव से गांवों तक, शहर से शहरों तक व्यापक विद्रोह का समाचार प्रचारित हो जायेगा।

किसी गुप्तवाणी या पवित्र समाचार के प्रचार के लिये यह अत्यन्त प्राचीन प्रणाली है।❀ अजीमुल्लाखां ने गेरी कही हुई इस प्रणाली के द्वारा सारे भारत में सर्वत्र क्रान्ति के समाचार को पहुँचाने का प्रबन्ध किया था। जिनके हाथों में चपाती या कमल पुष्प आ जायेगा वे अगर इसको दूसरे हाथों में नहीं देंगे तो भयंकर पाप के भागी बन जायेंगे। इस स्वाभाविक भय से प्रचार-कार्य चालू रहा था। इस सांकेतिक अन्यथा गुप्त प्रणाली के प्रवर्तक बहुत पुराने जमाने के व्यक्ति थे। आजकल भी यह प्रणाली चालू है।

इस सुदीर्घ आलोचना के बाद पांचों सज्जन प्रणिपात करके चले गये। श्रीमन्त नाना साहब ने मुझको हिमालय भ्रमण के बाद कानपुर (बिठूर) में आने के लिये आमन्त्रण दिया था और मैंने★ आमन्त्रण स्वीकार कर लिया था।

❀अजीमुल्लाखां ने चपाती का प्रचार किया पर इतिहासकारों को इस तथ्य का पता नहीं।

★हिमालय-यात्रा के पीछे ऋषि कानपुर पहुंचे। सन् ५७ के पांच मास कानपुर, अलाहाबाद में विद्रोह को साक्षात् करते बिताये। थियासोफिस्ट के आत्मचरित्र से भी यह स्पष्ट है। तिथियों की गणना करो—देखो १९५७ योगावतरण में।

नाना साहब और विठूर—कानपुर से डेढ़ योजन की दूरी पर पश्चिम की तरफ गंगा के पश्चिम उपकूल में विठूर है। ब्रह्मा ने यहाँ यज्ञ किया था इसलिये इसका दूसरा नाम ब्रह्मावर्त है। नाना साहब बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र थे। इनका प्रकृत नाम था धुन्धु पन्थ। द्वितीय बाजीराव ने अंग्रेज सरकार को आत्मसमर्पण किया था और वार्षिक आठ लाख रुपये से सन्तुष्ट होकर विठूर में अंग्रेज के नजरबन्दी के रूप में रहने लगे। द्वितीय बाजीराव की मृत्य के बाद अंग्रेज सरकार ने वह वार्षिक आठ लाख रुपया बन्द कर दिया था। यही नाना साहब प्रजा-विद्रोह के अन्यतम नेता थे। (ह.ले. ३१६ पृ०)।

महर्षि द्वारा विदेशी शासन के विरुद्ध साधुओं को संगठित करने का प्रयास

हरिद्वार कुम्भ मेला (ह० ले० पृ० ३१३)

अब हमने हरिद्वार के कुम्भ मेले के उपलक्ष्य में योग सिद्ध साधकों के सन्धान में और साधुओं के संगठन के सम्बन्ध से ध्यान दिया। कुम्भ-मेले में भारत के और तिब्बत के लाखों साधुओं का समागम होता है।

ऐतिहासिक लोग बोलते हैं कि राजा हर्षवर्धन के राजस्व काल में (सप्तम शताब्दी में) कुम्भ मेला का प्रवर्तन प्रयाग-क्षेत्र में हुआ था। (ह० ले० पृ० ३१४) १२ वर्ष बाद उन्हींने प्रयाग में, हिन्दू और बौद्ध साधुओं के सम्मेलन का आवाहन किया था। तब से कुम्भ योग में हरिद्वार में, प्रयाग में, नासिक में और उज्जयिनी में सन्न्यासियों के महासम्मेलन होते हैं।

चैत्र संक्रान्ति (महाविषुव संक्रान्ति) में हरिद्वार में कुम्भ स्नान होता है। ब्रह्मकुण्ड में मुख्य स्नान होता है। शिवरात्रि में प्रथम स्नान, चैत्र अमावस्या में द्वितीय स्नान और महाविषुव संक्रान्ति में तृतीय स्नान या प्रधान स्नान होता है।

नासिक में कुम्भ मेला चार्तुमास्य के समय होता है। आषाढ़ की शुक्ला एकादशी से कार्तिक की शुक्ला एकादशी तक चार्तुमास्य है।

प्रयाग—मकर संक्रान्ति (पौष संक्रान्ति) से प्रयाग के त्रिवेणी संगम में।

उज्जयिनी—वैशाखी पूर्णिमा में उज्जयिनी में कुम्भ मेला होता है।

प्रति ६ वर्ष बाद हरिद्वार में और प्रयाग में अर्धकुम्भ मेला होता है।

चैत्र-संक्रान्ति में (महाविषुव-संक्रान्ति) हरिद्वार के ब्रह्म-कुण्ड में तृतीय या प्रधान स्नान होते हैं। वहाँ शिवरात्रि में और द्वितीय स्नान होते हैं, वहाँ चैत्र-अमावस्या में।

पौष संक्रान्ति (मकर-संक्रान्ति) में प्रयाग के त्रिवेणी संगम में (ह० ले पृ० ३१६) कुम्भ मेले के स्नान होते हैं। वह ही प्रथम या प्रधान स्नान है। द्वितीय स्नान होते हैं परवर्ती अमावस्या में और तृतीय स्नान होते हैं वसन्त-पंचमी में।

चार्तुमास्य में (आषाढ़ शुक्ला एकादशी से कार्तिक की शुक्ला एकादशी तक) नासिक में कुम्भ-मेला लगता है। इस मेले का प्रथम स्नान होता है श्रावण मास में बृहस्पति के साथ मंगल के और शुक्र के साथ सिंह राशि के मिलन से या कुम्भयोग में। यह ही प्रधान स्नान है। भाद्र की अमावस्या में यहाँ द्वितीय स्नान और कार्तिक की शुक्ला एकादशी में तृतीय स्नान होते हैं। सन्न्यासी लोग नासिक से ढाई योजन की दूरी पर गोदावरी के उत्पत्ति स्थान (लम्बकेश्वर) में रहकर कुशावर्त घाट में स्नान करते हैं।

उज्जयिनी का कुम्भमेला वैशाखी पूर्णिमा के कुम्भलग्न में होता है। यहाँ यह एक ही मात्र प्रथम और प्रधान स्नान होता है।

प्रयाग—इलाहाबाद में है। तीर्थराज-प्रयाग और दूसरे छः प्रयाग (ह.ले. पृ. ३१७) हैं हिमालय में :—

(१) देव प्रयाग—भागीरथी और अलकनन्दा के मिलन-स्थान में है।

(२) रुद्र-प्रयाग—अलकनन्दा के साथ मन्दाकिनी के मिलन-स्थान में है।

(३) शैव-प्रयाग—केदारनाथ जाने के रास्ते में त्रियुगी नारायण और गौरी कुण्ड के अन्दर मन्दाकिनी के साथ शैव-गंगा या काली गंगा के मिलन-स्थान में है।

(४) कर्ण-प्रयाग—बदरी के रास्ते में अलकनन्दा के साथ विष्णु-गंगा के मिलन-स्थल में है।

(५) नन्द-प्रयाग—अलकनन्दा के साथ मन्दाकिनी के मिलन-स्थल में है।

(६) विष्णु-प्रयाग—अलकनन्दा के साथ विष्णुगंगा के मिलनस्थल में है।

मैं इन छः प्रयागों में भी योग-सिद्ध साधकों के सन्धान में गया था, दूसरा मेरा उद्देश्य साधु-संगठन था।

समाट् हर्ष वर्द्धन (ह० ले०पृ० ३१८)

सुना जाता है कि हर्ष वर्द्धन कुम्भ-मेलों के स्थानों में विराट् महा-यज्ञों के अनुष्ठान करते थे। सर्वस्व दान दिया करते थे और उन्हीं स्थानों में ही साधु-सन्यासी और ज्ञानियों के सम्मेलनों के कारण कुम्भ-मेलों का प्रवर्तन हुआ था। इन सम्मेलनों में लक्ष २ साधु-सन्यासियों की शोभा-यात्रा एक अपूर्व दृश्य है। मैं तीन वार हरिद्वार के कुम्भ मेले में सम्मिलित हुआ था। यह थी हरिद्वार कुम्भ मेले में मेरी प्रथम उपस्थिति। अब मैंने विभिन्न नेताओं से, विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के नेताओं से अपने दो विषयों पर आलोचना के लिये भेंट की थी।

वेदान्तियों का मनोभाव : चारों दिशाओं में मठ

जगद्गुरु शंकराचार्य ने सन्यासियों को एकता-बद्ध करने के लिये और उनसे जगत् की उन्नति करने के लिए भारत की चारों सीमाओं में सन्यासियों के चार मठ स्थापित किये थे। उत्तर में बदरी नारायण-क्षेत्र में **ज्योतिर्मठ**, दक्षिण के (कन्याकुमारी) क्षेत्र में **शृंगेरी मठ**, पश्चिम के द्वारावती क्षेत्र में **शारदा** मठ और पूर्व के पुरुषोत्तम क्षेत्र मे **गोवर्द्धन** मठ स्थापित करके उन मठों के संचालनार्थ चार शिष्यों को प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया था। सन्यासियों को उन्होंने दस सम्प्रदायों में विभक्त करके उन को चारमठों के अन्तर्गत कर दिया था। आज भी उन चार मठों के अन्तर्गत सन्यासी लोग दस नामों में से किसी न किसी नाम से अपना परिचय देते हैं।

दस नामी सन्यासी सम्प्रदाय

शृंगेरी मठ के सन्यासियों के नाम—सरस्वती, पुरी और भारती ये तीन। गोवर्द्धन मठ के—वन और आरण्य ये दो। शारदा मठ के—तीर्थ और आश्रम ये दो और ज्योतिर्मठ के गिरि (ह०ले० पृ०३१६) पर्वत और सागर ये तीन नाम हैं?

ब्रह्मचारियों के नाम

शृंगेरी मठ के ब्रह्मचारी—चैतन्य, गोवर्द्धन मठ के ब्रह्मचारी प्रकाश, शारदा मठ के ब्रह्मचारीस्वरूप और ज्योतिर्मठ के ब्रह्मचारी आनन्द हैं।

श्रीशंकराचार्य के चारों मठों के अन्तर्भुक्त सन्यासी और ब्रह्मचारी

हजारों कुम्भ-मेलों में उपस्थित हु थे। मैंने इनके चारों शंकराचार्यों से और प्रधान-प्रधान सन्न्यासियों से केवल सन्न्यासी-संगठन के लिये उपदेश, परामर्श और सहयोग मांगा था। मेरी प्रार्थना थी—"आप में से कई एक सन्न्यासी आ जाइए। हम लोग सारे भारतवर्ष में कम से कम एक हजार सन्न्यासी संगठित और मिलित हो जायें।

हमारे उद्देश्य रहेंगे—(१) वेद प्रणिहित धर्मका उद्धार और प्रचार करना। (२) सामाजिक आदर्श और मर्यादा को देशवासियों के सम्मुख स्थापित करना, (३) देश को विदेश और विदेशियों के प्रभाव से मुक्त करना, (४) देश के मंगल के लिये मन और जीवन समर्पित कर देना।

आप ही में से इस कार्य के कोई न कोई संचालक कर्णधार बन जाइये।

उनके मनोभाव—हमारी इस प्रार्थना पर चारों मठों के चारों शंकराचार्य और बड़े-बड़े सन्न्यासियों ने (ह०ले० ३२०) इस आशय पर अपने मनोभावों को इस रूप से प्रकट कर दिया—"हम ब्रह्मवादी सन्न्यासी हैं, अद्वैतवादी हैं। हमारे लिये ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। राष्ट्र, समाज, परिवार, जीवन, जगत् और ये सब स्वतन्त्रता-परतन्त्रता, वर्ण आश्रम, हमारा-तुम्हारा भाव सब कुछ मिथ्या है। मिथ्या के लिये हम कुछ करना व्यर्थ समझते हैं।"

हम उन्हें केवल यह कहकर चले आये थे—'दुःख की बात है कि आपके भोजन के लिये अन्न, पीने के लिये पानी, रहने के लिये स्थान, सरदी के लिये कम्बल, हवा के लिये पंखा और सेवा के लिये शिष्य ही एक मात्र सत्य स्पष्ट हो रहे हैं, बाद में बाकी सब कुछ मिथ्या मालूमपड़ते हैं।"

इसके बाद निराश होकर हम वैष्णव-सम्प्रदायों के प्रधान-प्रधान नेताओं के पास आ गये थे, ये लोग भी कुम्भ मेले में हजारों एकत्र हुए थे। ये लोग द्वैतवादी हैं और भक्त-वैष्णव हैं।

वैष्णव सम्प्रदाय

वैष्णवों के अन्दर सम्प्रदाय बहुत हैं। शंकराचार्य के समय में भी बहुत तरह के वैष्णव मौजूद थे। अब मात्र रामानुजी, विष्णुस्वामी मध्वाचार्यी और निम्बार्की सम्प्रदाय ही प्रबल हैं। इन सम्प्रदायों का वैरागी या वैष्णव नाम से परिचय दिया जाता है। ये लोग द्वैतवादी हैं और अद्वैतवाद के विरोधी हैं। अवतारों की उपासना करना ही इनकी साधना है। सत्ययुग के नारायण, त्रेतायुग के श्रीरामचन्द्र, द्वापरयुग के श्रीकृष्ण और कलियुग

के श्री चैतन्य देव की उपासना करना ही इनकी मुख्य साधना है। श्री रामानुजाचार्य श्री बल्लभाचार्य, श्री निम्बार्काचार्य और श्री चैतन्यदेव ही (ह.ले. पृ.३२१) इनके स्व-स्व सम्प्रदायों के आलम्बन हैं। रामायेत, रामानुजी और गौड़ीय वैष्णव नामों से भी इनका परिचय होता है। दक्षिण देश में रामानुजी वैरागी या वैष्णव अधिक संख्या में हैं। इस प्रकार अयोध्या में और चित्रकूट में रामायेत वैष्णव, वृन्दावन अंचल में श्रीकृष्ण के उपासक, बंगाल और उड़ीसा में गौड़ीय वैष्णव, आसाम में शंकर देव के उपासक, शंकर वैष्णवों की संख्या अधिक है। वैष्णव या वैरागी सम्प्रदायों के अन्दर चार मठधारी सम्प्रदाय हैं—(१) श्री रामानुजाचार्य का श्री सम्प्रदाय, (२) श्री मध्वाचार्य का ब्रह्म-सम्प्रदाय, (३) श्री वल्लभाचार्य का वल्लभचारी या रुद्र सम्प्रदाय और (४) श्री सनक सनन्दन-सनातन सनत्कुमार का निम्बार्क सम्प्रदाय।

उत्तर भारत में रामानुजी से रामानन्दी वैष्णव अधिक प्रभावशाली हैं। रामानुज के शिष्य देवानन्द, देवानन्द के शिष्य हरिनन्द, हरिनन्द के शिष्य राघवानन्द और राघवानन्द के शिष्य रामानन्द थे। इसलिये परम्परागतरूप से रामानुज से रामानन्द चतुर्थ शिष्य थे। इन सभी के अन्दर २ श्रेणियाँ हैं, उदासीन और गृहस्थ। गृहस्थ वैष्णव लोग उदासीनों के या गृहस्थ वैष्णव गुरुओं के निदेशानुसार संसार धर्म का पालन करते हैं। उदासीन वैष्णव तीर्थ-पर्यटन, भिक्षा या देव-पूजा या मठों के महन्त बनकर आजीविका चलाते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों में इनके आश्रय-स्थल हैं और गृहस्थ वैष्णवों की सहायता से पुष्ट मठ, मन्दिर, देवोत्तरभूमि या अतिथिशालायें इनके आलम्बन हैं।

इन वैष्णव सम्प्रदायों के बड़े-बड़े गोस्वामी, महन्त, गुरु और साधु-सन्यासी हरिद्वार के कुम्भ मेले में सम्मिलित हुए थे। मैंने सब ही की सेवा में उपस्थित होकर देश राष्ट्र और समाज की शोचनीय दशा के प्रति दृष्टि आकर्षण करके अपनी दोनों प्रार्थनाओं को पूर्ववत् रखा था। इन्होंने भी दूसरे ढंग की भाषा का प्रयोग करके मुझको निराश कर दिया था।

उनके मनोभाव

उन सब के कहने का सारांश यह था "हमारे यह शरीर श्रीराम या श्रीकृष्ण के भजन के लिये हैं दूसरे कार्य के लिये नहीं हैं। दूसरे कार्य करना, श्री भगवान् के स्थान में देश-समाज राष्ट्र की सेवा करना महापाप है। मानव-शरीर फजूल कार्य के लिये नहीं है। महाप्रभु की सेवा और चिन्तन

से मुक्ति मिलेगी, देश-समाज-राष्ट्र की वैषयिक चिन्ता से भगवद्-भक्ति ढीली हो जायेगी, मुक्ति लाभ या गोलोकवैकुण्ठ में जाने के मार्ग में प्रबल बाधायें आ जायेंगी (ह. ले. ३२३) मानव-जीवन इतना सस्ता नहीं है। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करके तब भक्ति-साधना के एक मात्र अवलम्बन भजन को शरीर मिल गया है। इन शरीरों को देश समाज राष्ट्र की भजन-विरोधी सेवा के लिये समर्पण करना बुद्धिमानों का कार्य नहीं है।"

वैष्णव-गुरुओं से निराश होकर लौटते समय मैंने केवल मात्र इन वाक्यों को बोला था—

"जिस देश में ऐसे भक्तों की संख्या अत्यधिक है उस देश का सर्व-नाश है"।

वैष्णव सम्प्रदाय की शाखा के अनुरूप बहुत सम्प्रदाय हैं। मैं इन सम्प्रदायों के नेताओं से मिला था और सभी की सेवा में साधु-संगठन के उद्देश्य का निवेदन किया था और प्रेरणा दी थी। सभी ने अनुरूप निराशाजनक बातें कहीं। उन सम्प्रदायों के नाम ये हैं—रामानुजी, रामाईत, कबीर-पन्थी, दादू पन्थी, (३२४ ह० ले०) रयदासी, सेन पन्थी, रुद्र संप्रदाय मीराबाई, तुलसीदास विट्ठलभक्त, चैतन्य सम्प्रदाय, स्पष्टदायक सम्प्रदाय, रामवल्लभी, साहब-धर्मी, बाउल, दरवेश, आउल, कर्ताभजा, न्याड़ा, सहजिया, खुशि-विश्वासी, गौरवादी, राधावल्लभी, सखी सम्प्रदाय, चरणदासी, हरिश्चन्द्री, सरपन्थी, माधवीपन्थी, वैरागी, नागा और ललिता। इनमें बंगाल के वैष्णव सम्प्रदाय अधिक हैं। इनके लिये साधु-संगठन का मतलब समझना ही कठिन हुआ था।

कुम्भ मेले की शोभा यात्रा

हिन्दू धर्म के विभिन्न सांप्रदायिक रूप देखने के लिए मैंने कुम्भ मेले के स्नान-यात्रियों की शोभा-यात्रा को देखा था। उसका स्वरूप निम्न प्रकार का था।

(१) **दिग्विजय डंका**

जगद् गुरु शंकराचार्य के लिये (ह. ले. ३२५) जय ध्वनि, एक नागा सन्यासी घोड़े पर सवार होकर दोदमामे पीटते हुए जाता है।

(२) **दिग्विजय का झण्डा**

शंकराचार्य की विजय-पताका लेकर एक नागा सन्यासी गेरु पताका लेकर घोड़े पर सवार होकर जाता है।

(३) **कसरत**

नागा सन्न्यासी लोग पदातिक और अश्वारोही सैन्यों के रूप में युद्ध भूमि में जाने के ढंग से अग्रसर होते हैं।

(४) **निदर्शन**

भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के और अखाड़ों के पताका-प्रदर्शन।

(५) **ऐक्यतान वादन**

युद्ध कालीन समवेत वाद्यध्वनि।

(६) **गैरिक पताका**

हाथी के ऊपर बैठे हुए संन्यासी के हाथों से त्याग के प्रतीत अति बृहत् गैरिक पताका को धारणा।

(७) **विजय पताका** (ह. ले. पृ. ३२६)

युद्ध में जय लाभ का निदर्शन हाथी के ऊपर जरीदार मखमल की बड़ी नीले रंग की पताका।

(८) **दण्डधारी**

नागा सन्न्यासियों की सोने-चान्दी से मण्डित दण्डों को धारण करके विजय-गौरव के ढंग से अग्रगति।

(९) **धूनाधारी**

युद्ध कालीन उत्साह-व्यंजक धूप-धूना के साथ अग्रगति।

(१०) **बल्लम पूजा**

बल्लमों से (मालों से) शत्रु-जय के बाद साधुओं की भारतवर्ष के हजारों लाखों नर-नारियों के सम्मुख त्यागी नागा साधु-सन्न्यासियों का विजय गर्व उन्मादन के साथ सामरिक ताल से पादक्षेप बहुत ही विस्मय के कारण हैं।

"पराधीन भारत में भी इतना हर्ष? क्या ये लोग भूल गये हैं कि हमारी मातृ-भूविदेशियों के हाथों में परतन्त्र है और पितृ-पुरुषों का धर्म विदेशियों से पद-दलित है? क्या इन लोगों को मालूम नहीं है कि विदेशी राहु ने हमारी देश-जननी को ग्रास कर लिया है और अब सर्वग्रास के लिये तैयार हो गया है? क्या इन लोगों को मालूम नहीं है कि देश में अदूर भविष्य में जो क्रान्ति आने वाली है उसमें मात्र एक हजार सन्न्यासी-साधु त्यागी-महात्मा भी भाग लें और अपने-अपने जीवनों की आहुतियों के रूप में अर्पण करदें तो देश सर्वनाश से बच जाये? हमने दृढ़ निश्चय कर लिया कि जब तक कुम्भ-मेला चलता रहेगा, मैं देश-जाति धर्म रक्षा के लिये मुख्य-मुख्य सब ही को प्रेरणा दूँगा। इन को संगठित रूप से मातृ-भूमि की सेवा और रक्षा के लिये (३२८ ह.ले.) सदा तैयार रहने के लिये अनुरोध करूँगा। गृहस्थ नर-नारी और भिन्न-भिन्न राज-पुरुषों

का भी यहाँ आगमन हुआ है। इन्हें भी इस कार्य से मदद पहुँचाने के लिये अनुरोध करूँगा और इसके बाद,योग-सिद्ध साधकों के सन्धान के लिए हिमालय और तिब्बत में भी भ्रमण करूँगा"।

निराशा में आशा—बहुत सम्प्रदायों के नेता मेरे उद्देश्यों के विरोधी बन कर मेरे विरुद्ध घूम-घूम कर प्रचार करने लगे थे और मेरे रहने के स्थान पर जाकर मेरे ऊपर आक्रमण और जुल्म के लिये जनता को भड़काने लगे थे। इससे सुफल यह हुआ, कि साधु-सन्यासी, यति और गृहस्थ तीर्थ-यात्री मुझ जैसे पाखंडी को देखने के लिये कौतूहली होकर चंडी पहाड़ में आने लगे थे। धीरे-धीरे दिन प्रतिदिन मेरे दर्शनार्थी तीर्थ-यात्रियों की संख्या बढ़ने लगी। दर्शनार्थी तीर्थ-यात्रियों के सम्मुख खड़े होकर मैंने सवेरे और दोपहर प्रतिदिन स्वदेश और स्वधर्म रक्षा के बारे में उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया (३३० ह. ले)। मेरे जीवन में जनता के सम्मुख व्याख्यान देने का सूत्रपात यहां से ही हुआ था। जनता पुरुष-स्त्री खड़े होकर उपदेश सुनकर चले जाते थे। सरकारी कर्मचारी और शान्ति-रक्षक भी वहाँ आया-जाया करते थे। इस सुफल के अन्दर मेरे लिये दो समस्यायें भी उत्पन्न हो गयी थी। जनता मुझे प्रणाम करने लगी और पैसे भी देने लगी।

मैंने कई-एक दिन हाथ जोड़ कर प्रार्थना की 'मुझको ये दोनों ही नहीं चाहियें। मेरे खाने के लिये हर रोज अति अल्प वस्तु की जरूरत होती है और पैसे की बिल्कुल जरूरत नहीं है। मुझे प्रणाम भी नहीं चाहिये। मैं मामूली सन्यासी हूं।"

मेरी प्रार्थना को जनता में से किसी ने भी सुना नहीं था।

एक सज्जन ने कहा—'हम लोग आपको कुछ नहीं देते और आपको प्रणाम भी नहीं करते। अपने प्राचीन ऋषि-मुनि और पूर्वजों के प्रति सम्मान प्रदर्शन करते हैं। इसके सिवाय और कुछ नहीं। जो कुछ पैसे आपकी भेंट के लिये दिये जाते हैं इसको भी रोकना नहीं चाहिये। यह भी हमारी जाति का अन्यतम सद्गुण है। यह भी प्राचीन धर्म गुरुओं के प्रति श्रद्धा का प्रदर्शन मात्र ही है। (ह. ले. पृ. ३३१)आप इसको जहाँ चाहें खर्च कर देना।" इस बात पर मैं नीरव और शान्त हो गया था।

राजा गोविन्द नाथ राय

गोविन्दनाथ राय उत्तरी बंगाल में नाटोर की प्रसिद्ध रानी भवानी के वंशज हैं। यह रानी सिराजउद्दौला के शासन काल तक भी आधे बंगाल की

शासन-कर्त्री थी। अंग्रेजों ने धीरे-धीरे सब ही राज्य ग्रास कर लिया था। ये लोग असहाय बन गये थे। अब ये लोग जमींदार मात्र हैं। राजा गोविन्दनाथ राय कुम्भ-स्नान के लिये हरिद्वार आये थे। आप अचानक रात्रि की शान्त, नीरव और निर्जन स्थिति में चार कर्मचारियों के साथ मशाल हाथ में लेकर मेरे पास आकर प्रणिपात करके बैठ गये और योग-विद्या के बारे में उपदेश माँगा। मैंने उनको उपदेश दे दिया और उन्होंने विदाई काल में मेरे सम्मुख ग्यारह सौ एक रुपये की थैली भेंट के रूप में रख दी थी मैंने समझाया कि मेरे लिये यह रुपया हानिकारक हो जायेगा। मेरे लिये यहां कुछ भी अभाव नहीं है। उन्होंने रुपया वापस नहीं लिया बल्कि प्रयोजनानुसार और कुछ गुरु-दक्षिणा के रूप में देने के लिये सूचना दी थी। उन्होंने सुना था कि मैं तिब्बत जाने के लिये विचार रखता हूं। उन्होंने कहा "तिब्बत जाना अतीव कठिन है और खतरनाक भी है। (ह. ले. पृ. ३३२) आप कभी उत्तर बंगाल में मेरे स्थान नाटोर तक आने की कृपा करें। हम आपके साथ अपने विश्वस्त पहाड़ी किसी एक आदमी को संगी और साथी के रूप में दे देंगे।" मेरा संकल्प था—काश्मीर होके हिमालय में भ्रमण करने का, फिर दार्जिलिंग होके लहासा तक जाने का और सम्भव हो तो गंगासागर भी जाने का। इसलिये इस संकल्प को ही पक्का कर लिया।

रानी लक्ष्मी बाई और रानी गंगा बाई—दो-एक रोज के बाद ही झांसी की रानी लक्ष्मी बाई और उनकी सहचरी* रानी गंगाबाई ने तीन कर्मचारियों के साथ वहाँ आकर प्रणिपात किया। परिचय पूछने पर लक्ष्मी बाई आँखों में आँसू भरकर ओजस्विनी भाषा में बोलने लगी—"मैं निःसन्तान और विधवा हूं। मेरे पतिदेव की मृत्यु के बाद मेरे श्वसुर-कुल के वैध राज्य को अंग्रेजों ने मेरे निःसन्तान होने के बहाने से अपना राज्य घोषित कर दिया। मेरे पतिदेव के राज्य से मेरा हक चला गया और अंग्रेजों का हक बन गया। सुनते हैं। अंग्रेज सेनापति बहुत अधिक संख्या में फौज लेकर मेरी झांसी को छीनने के लिये आजायेंगे।"

आँखों से आँसू बहाती हुई झाँसी की महारानी ने कहा—"महात्मा जी! मैं जिन्दा रहती हुई अपने श्वसुर-कुल के इस राज्य को

*झांसीर रानी लक्ष्मी बाई औ तहाँरसहचरी गंगाबाई तीन कर्मचारी संगे ओरवाने आशिया प्रणिपात करिया।-पाण्डुलिपि (सहचरी की हिन्दी सपत्नी अशुद्ध है।—सं०)

दुश्मनों को नहीं दूँगी। मैं लड़ाई करती हुई मर जाऊँगी, लेकिन झाँसी को चुपचाप लुटेरे डाकुओं को नहीं दूँगी। मेरे लिए इस प्रकार के मरण को वरण करना ही कल्याणकर है। आप हमको आशीर्वाद दीजिए कि हँसती हुई युद्ध में मर जाऊँ।"

लगभग बीस वर्ष की एक तरुणी के मुख से ऐसी बातें सुनकर समझ में आगया कि भारतवर्ष में अभी तक वीर रमणी मौजूद हैं, भारत वीर-शून्य नहीं है।

रानी को मैंने❀ बोल दिया कि "नश्वर शरीर को कोई भी स्थायी नहीं कर सकता है। स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिये जो अपने अस्थायी शरीर को दे देते हैं वे कभी मरते नहीं। चिरकाल के लिए वे पूजा पायेंगे। (ह.ले.३३४ पृ.) हम भगवान् से आपके लिए शुभ और कल्याण की प्रार्थना करते हैं।"

उन्होंने भी एक हजार एक रुपया मेरे सम्मुख रखकर सम्मान दिखाया। नाटोर के राजा से जैसा मैंने कहा था, उन्हें भी वैसा बोल कर रुपये लेने से असहमति प्रकट की। लेकिन इन्होंने भी नहीं सुना। इससमस्या से मुक्त होने के लिए मैंने भगवान् से प्रार्थना भी की थी। जनता ने सुनी नहीं। जिसका जैसा सामर्थ्य हो, रुपये-पैसे देने लगे थे। इसका सदुपयोग कैसे हो मैं यही सोचने लगा। वे चली गईं।

नाना साहब आदि का पुनः आगमन नाना साहब और नये अपरिचित तीन-चार सज्जन सात-आठ रोज के बाद फिर हम से मिलने के लिये आये थे। ये सब कर्म-चंचल और व्यस्त थे।

नाना साहब ने कहा—'हम लोग सारे भारतवर्ष में भ्रमण के लिए भिन्न-भिन्न दिशाओं में चले जायेंगे। अति शीघ्र निर्दिष्ट तारीख में हम लोग चुने हुए स्थानों में सुस्पष्ट विद्रोह का युद्ध शुरू कर देंगे। तारीख अब तक ठीक नहीं हुई है। संगठन में हम लगे हुए हैं। आप से आशीर्वाद लेने के लिए हम यहाँ आये हैं हम जहाँ रहें आपको यथासाध्य सूचित करते रहेंगे।"

हमने कहा—"जो आशीर्वाद मैं आप लोगों को दूँगा। आप लोग उसको जरूर लेंगे—इसकी ठीक-ठीक प्रतिश्रुति दीजिए। आशीर्वाद मैं जरूर दूँगा।"

❀ ३३६ पृष्ठ के हस्तलेख में ही उसी पृष्ठ पर बीच में ३३७ पृ. संख्या डाली गई है। उससे जान पड़ता है कि यह प्रतिलिपि किसी पहली पाण्डुलिपि की पुनःप्रतिलिपि है। यहां आगे पृष्ठों में भी बीच बीच में पृष्ठ संख्या है।—सं०

उन्होंने कहा—"आपका आशीर्वाद हमारे लिए शिरोधार्य है।"

मैंने राजा गोविन्द नाथ राय और रानी लक्ष्मी बाई से प्रदत्त रुपये और जनसाधारण से प्रदत्त खुदरा पांच सौ तैंतीस रुपये कुल छब्बीस सौ पैंतीस रुपए नाना साहब के हाथ में स्वदेश-रक्षा के लिए दे दिये। उन लोगों ने सहर्ष ग्रहण किये।

हमने कह दिया कि—"जनसाधरण का नेतृत्व करना और आग लेकर खेल करना—दोनों ही खतरनाक हैं। मामूली भूल से भी सत्यानाश हो जाता है। हमारे पास भेंट के रूप में जो कुछ एकत्र हो जाएगा सब कुछ आपके पास स्वदेश-रक्षा के लिए ही आशीर्वाद के रूप में भेजते रहेंगे।"

ये लोग प्रसन्न होकर चले गए। मैं भी हिमालय में योगी और साधकों को ढूँढ़ने के लिए तैयारी में लगा।

पांच योग-साधकों का संग

हरिद्वार में कुम्भ मेले के बाहर निर्जन जंगल और पहाड़ी अंचलों में मैं खास २ स्थानों में दिनों के अधिकांश समय को योगसाधना में बिताता था। इस उपलक्ष में मैंने पांच योग-साधकों के संग में आने का सुयोग-लाभ किया था। उनका क्रियात्मक योग देखा। इनके नाम थे—स्वामी मोक्षानन्द तीर्थ, चिदानन्द ब्रह्मप्रकाश आरण्य, स्वामी दिव्यानन्द तीर्थ, स्वामी भक्तिविलास पांचरात्र और स्वामी निर्वाणानन्द पुरी—इनके प्रति मैं कृतज्ञ हूं। इन्होंने मुझे क्रियात्मक रूप से योग-साधना के बारे में बहुत कुछ उपदेश भी दिया था।

साधुजनता में जागृति—नाना साहब और रानी लक्ष्मीबाई के प्रचार के कारण साधु लोग मेरे साथ वार्तालाप की इच्छा से एक-एक करके सैकड़ों मेरे पास दिन भर शंका-समाधान करने के लिये आने लगे स्वधर्म-रक्षा के लिए विहित कार्यक्रम ❀ (३३८ हले.) जानने के लिए वे लोग आते थे। मैंने सबसे अनुरोध किया था :—

[आप लोग अपने-अपने सम्प्रदायों के अन्तर्भुक्त रहकर ही स्वधर्म रक्षा के लिये तैयार हो जाइए। जन साधारण के अन्दर धर्म-रक्षा के लिये नया जोश उत्पन्न कीजिए। धर्म हमारे पूर्वजों की और ऋषि-मुनियों की कीर्ति और दान हैं। अहिन्दू नर-नारियों के प्रभाव से जाति और धर्म को और कतिपय विदेशी पादरी या मौलवियों की धोखेबाजी से ऋषियों के वंशजों को बचाइये। धर्मों की प्राथमिक शिक्षा के प्रथम पाठ का जन-

साधरण में प्रचार कीजिये। प्रयोजनानुसार धर्म-रक्षा के लिये और जाति के कल्याणार्थ जीवन दे देना परम पुण्य कार्य है। जगह-जगह धर्म-प्रचार के लिए केन्द्रों की स्थापना कीजिए। साधुओं के जीवन में दोनों ही पुण्य कार्य हैं। (३३९ ह.ले.)

प्रथम एकान्त जीवन में आत्मिक उन्नति के लिये योग- साधना करना और

दूसरा सामूहिक जीवन के उत्कर्ष के लिए वेद-प्रणिहित धर्म का प्रचार करना।

इन दोनों में ही हमारा पारमार्थिक कल्याण स्थित है। आप लोग केन्द्रों के अधीन रह कर संगठित हो जाइये। स्वदेश हमारी माता है और स्वधर्म हमारा पिता है। दोनों की रक्षा के लिये तत्पर रहिये और स्वेच्छा से जो साधु लोग इस व्रत को धारण करें उनके नामों की तालिका बनाते रहिये।']

साधु लोगों ने कहा—हम लोगों ने आपसे प्रेरणा पाते ही अपनी इच्छा से, (ह. ले. पृ. ३३९) पहले ही करीब ढ़ाई सौ साधुओं के नामों की तालिका बनाई है। आप जब चाहें ये लोग एक साथ स्वदेशरक्षा के लिये तैयार हो जायेंगे।"

मैंने कहा (ह. ले. ३४०)—"उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम भारत में जितने सैन्यावास मौजूद हैं वहां सुविधा के अनुसार कमलपुष्प और चपाती की बहु प्राचीन तरकीब से सैन्य और नागरिकों के अन्दर स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिए प्रेरणा और जागृति पैदा कर देना आवश्यक है।

वे लोग मेरी बातें शिरोधार्य करके चल दिये और बोले-सब के साथ सम्बन्ध रखकर ही चलेंगे।

मैंने केवल इंगित से बोल दिया था कि "उत्तर भारत में मेरठ की तरफ, पूर्व भारत में बारीकपुर की तरफ और दक्षिण भारत में भेलोर की तरफ जरूर जाना चाहिए। केवल आप लोग दिल्ली के योगमाया के मन्दिर के पुरोहित त्रिशूल बाबा से सम्पर्क रखिएगा। वहाँ से नियमित समाचार मिलेगा और आप लोगों के समाचार भी अवश्य हमको वहाँ से मिलने चाहियें।"

—:०:—

षष्ठ अध्याय

हिमालय पर्यटन

हरिद्वार से ऋषिकेश—साधु लोग चले गये और मैं हरिद्वार से ऋषिकेश की तरफ रवाना हो गया।* हिमालय में भ्रमण करना और योगियों से योग-साधना के बारे में उपदेश ग्रहण करना और साधुओं का संगठन करना ही उद्देश्य था। कहीं-कही योगियों से मिलने का अवसर मिला था।

ऋषिकेश से श्रीनगर (ह०ले० पृ० ३४२) ★ऋषिकेश से परिव्राजक साधुओं से मिलित होकर लक्ष्मण झूला में आया। वहाँ से टिहरी आकर श्रीनगर तक पहुँच गया था। केदार घाट के योगी साधुओं के साथ मिलित होके तीन सप्ताह का समय श्रीनगर पहुँचने में व्यतीत किया।

---

*तत्पश्चात् कुछ दिनों तक ऋषिकेश में रहा।

★यह श्रीनगर अलखनन्दा के किनारे हैं। इसके पास ही बिल्वकेदार है। इसके ही केदार घाट में तीन सप्ताह योगाभ्यास कर काश्मीर के श्रीनगर को प्रस्थान कर गए। इस अलखनन्दा वाले श्रीनगर से काश्मीर के श्रीनगर को टाँस नदी के किनारे-किनारे वेलाँग पास का हर्सिल से जाता है। वास्पा घाटी से चित्रकूट, सतलुज, कुल्लू, मनाली रोहताँग पास, लाहुल, त्रिलोकी नाथ चम्बा जाते हैं। हर्सिल में दो मास रहने का हस्तलेख ऋषि का विद्यमान है। हर्सिल में दो मास तक भोजन देने वाले ब्राह्मण के घर में, श्री आनन्द स्वामी जी ने देखा है। मैं भी पण्डित जी मिलकर जानकारी ले चुका हूं।—सं०

श्रीनगर से अमरनाथ*

श्रीनगर से अमरनाथ जाना मैंने जरूरी समझा था। सुना था अमरनाथ में कोई न कोई योग-सिद्ध पुरुष सदा ही रहते हैं। उनमें योग-बल से देहत्याग करने की शक्ति है (ह. ले. पृ. ३४३) और कैवल्यलाभ की सहज शक्ति उनमें सदा ही है। अगल-बगल बहुयोग-सिद्ध पुरुषों के स्वेच्छा-मृत्यु के बाद जीर्ण कंकाल वहाँ ही पड़े रहते हैं। तिब्बती साधु लोग उन कंकालों के टुकड़ों को तिब्बत में ले जाते हैं। तिब्बत के साधु लोग उन टुकड़ों को बाजार में बेच देते हैं।

अमरनाथ जाने के लिए मैं तैयार हो गया था। साधु-दर्शन होगा, ऐसा सुना था। बेताल-सिद्ध नाम के किसी योग-सिद्ध पुरुष के बारे में भी सुना था। पहल गाँव, चन्दनवाड़ी, शेषनाग और पंचतरणी होता हुआ मैं अमरनाथ पहुँच गया था। वहाँ किसी गुफा में सरदी के कारण शुक्ला प्रतिपदा से बरफ जमते-जमते पूर्णिमा में कुछ हाथ चौड़ा और तीन हाथ ऊँचा बरफ का शिवलिंग बन जाता है। उसी का नाम अमरनाथ शिवलिंग है। कृष्णा प्रतिपदा से वह शिवलिंग क्षय को प्राप्त होते-होते अमावस्या में नाम मात्र ही रहता है। यह अमरनाथ शिवलिंग का माहात्म्य कहा जाता है।

---

*श्रीनगर से अमरनाथ आदि की यात्रा का वर्णन थ्यासोफिस्ट या पूना प्रवचन में नहीं है। यह सब प्रजा विद्रोह सन् ५७ का संगठन-कार्य था। विद्रोहरक्षार्थ नहीं बताया। प्रकाशित न करने का वचन ले बंगाल में भिन्न-भिन्न लेखकों को दिया। यह थी ऋषि की सावधानी एवं दूर-दर्शिता।—सं०

महादेव कैलास के रहने वाले थे, कुवेर अलकापुरी के रहने वाले थे। यह सब इतिहास केदार खण्ड का वर्णन किया गया है। **हम स्वयं भी इन सब ओर घूमे हुए हैं।** काश्मीर से लेकर नैपाल तक हिमालय की जो ऊँची चोटियाँ हैं वहाँ देवता अर्थात् विद्वान् पुरुष रहते हैं।" ऋषि की उपदेश मञ्जरी—पृ० ११७ व्याख्यान दस।

बद्रीनारायण को गया। 'रावल' जी महन्त थे···हम दोनों का वेदों और दर्शनों पर बहुत विवाद रहा।···उससमय मैंने दृढ़ संकल्प किया कि समस्त देश में विशेषतः पर्वतीय स्थलों में अवश्य ऐसे पुरुषों का अनुसंधान करूँगा। आत्म-चरित्र—पं० भ० पृ० ३४

वहाँ बेताल-सिद्ध बाबा का दर्शन मिला था। उन्होंने मुझको अति सहज उपाय से मोक्ष लाभ का उपाय बतला दिया था। इसमें अतिशीघ्र मोक्ष-लाभ होता है यह निश्चित है। उनका कथित उपाय (३४६ ह.ले.) हैं कि किसी नव-जात पुं-शिशु को चोरी करके लाना और अमावस्या के मध्य रात्रि में श्मशान भूमि में उस जीवित शिशु पर बैठे हुए चामुंडा देवी के बीजमन्त्र एक लाख, एक हजार एकसौ एक वार जप करने से अतिद्रुत मोक्ष मिल जाता है।" मैं साधन-प्रणाली को सुनकर ही नमस्कार करके भाग गया था।

अमरनाथ से श्रीनगर में—अमरनाथ से श्रीनगर आकर मैंने सुना था कि बौद्ध साधु लोग विभिन्न स्थानों पर परिभ्रमण करके तिब्बत जा रहे हैं। साधुओं के लिए राजनैतिक विधि-निषेध बहुत ही ढीला है। मैं बहुत ही प्रयत्न करके बौद्ध-साधुओं में—तीर्थयात्रियों में सम्मिलित होगया था। श्रीनगर से मैं क्षीर-भवानी के मन्दिर में योगी साधुओं के सन्धान में गया था। लेकिन निराश होकर चला आया था।

श्रीनगर से गान्धार बल—बौद्ध साधुओं के साथ स्थल-पथ से मैं डेढ़ योजन दूरी पर गान्धार बल नामक स्थान में आया था। क्षीर भवानी मन्दिर यहाँ से समीप ही है। गान्धार-बल से तुलमुल आया। इस गाँव के प्रान्त भाग में ही क्षीर भवानी का मन्दिर है। मैं तिब्बत जाऊँगा। बौद्ध साधुओं ने मेरे लिए 'ले" शहर के वजीर और कार्गिल शहर के तहसील-दार के नाम पर परिचय पत्रों का प्रबन्ध कर दिया था। मैं साधुओं के साथ सिन्धु नद के तट को अवलम्बन करके पैदल तिब्बत रवाना हो गया।

गान्धार बल से कंगन—(ह०ले० ३४७) गान्धार बल से हम नुन्नुर, ओयाईल्लादि स्थान हो कर कंगन नामक स्थान को पहुँचे। सिन्धु नद के तट देश में असंख्य अखरोट, नासपाती, सेब, बादाम और अंगूर आदि के पेड़ और पौदे हैं। भगवान् की सुन्दर सृष्टि को देखते हुए तिब्बत के अन्त-र्वर्ती स्थानों की तरफ हम अग्रसर होने लगे। मार्ग में बौद्ध साधुओं से मेरी धर्म-विषयक बातचीत भी हुआ करती थी। हम हमेशा कहा करते थे कि गौतम-बौद्ध ने कोई अलग धर्म-सम्प्रदाय स्थापित करना नहीं चाहा था। कतिपय व्यक्तियों की प्रबल चेष्टा से यह बौद्ध सम्प्रदाय की स्थापना हुई थी और इनकी (२४८ ह.ले.) मृत्यु के बाद महायान और हीनयान आदि आदि उप-सम्प्रदायों का उद्भव हुआ था। मैं कहा करता था कि गौतम

बुद्ध शुद्ध हिन्दू सन्न्यासी थे। हमारी इस बात पर बौद्ध साधुओं के अन्दर कोई-कोई नाराज हो गये और कोई-कोई सन्देह भी करने लगे थे।

कंगन से माटायन—हम लोगों ने कंगन से "गुंड", "हायान", "गंजन" "सोना मार्ग" "द्रास", "सिरबल", "बालताल" आदि स्थान अतिक्रम किए थे। बालताल गाँव से योजिला नामक गिरिपथ पार होने से ही तिब्बत राज्य शुरू हो जाता है। यह गिरिपथ ही मध्य एशिया से भारत आने-जाने का प्राचीन पथ है। इस रास्ते से परिचय पत्र ले हम तिब्बत के पहले गाँव "माटायन" में पहुँच गए थे। अब हम लोग हिमालय पार तिब्बत में थे।

माटायन से कार्गिल (ह०ले०पृ०३४६) माटायन से "पानदास" "दुनुदुल-याँग", "तासगाम", "सिमरी खुबु", पड़ावों आदि ग्राम होकर हम सब कार्गिल नामक शहर में पहुँच गए थे। यहाँ से "ले" शहर करीब १५ योजन है। "ले" लद्दाख राज्य का प्रधान शहर है। कार्गिल में करीब सभी धर्मावलम्बी निवास करते हैं।

कार्गिल से "ले" शहर—कार्गिल, लद्दाख और काश्मीर का मध्यवर्ती स्थान है। कार्गिल से हमको "मौलवा चम्बा" नामक गाँव में जाना था। पर्वत पर आरोहण करके बहुत ही ऊँचे रास्ते से करीब तीन योजन रास्ता चलने में १२ घण्टे समय लगता है। प्राणवायु वहाँ बहुत ही हल्का है इसलिए जाना कठिन है। प्रातः काल रवाना होके हम लोग रात को पहुँच गये थे। कार्गिल से करीब ढाई योजन दूरी पर लामाओं के मठ और बौद्ध स्तूप नजर आए। दो योजन आने पर (३५० ह. ले. "बौद्ध खर्बु" आदि में हम आए थे। हरएक गाँव में मृत व्यक्तियों का श्मशान-भरम कोटा में रखा जाता है और मृतव्यक्तियों का नाम प्रस्तर-खण्ड में लिखकर रख दिया जाता है। लद्दाख के राजा लोग प्राचीन काल में इन प्रस्तरों के लिए प्राचीर निर्माण कर देते थे और पुण्य संचय करते थे। हमने ऐसे बहुत प्रस्तरों को देखा था। इस रूप में "नुरला" नाम गाँव अतिक्रम करने के बाद "लिकिर गुम्फ" नजर आया था। लिकिर पर्वत बहुत ऊँचा है। बौद्धों के लिए यह बहुत ही पवित्र स्थान है (३५१ ह.ले.) सोने के सिंहासन में सोने की बुद्ध मूर्ति है। वज्रपाणि, लोकेश्वरी, वज्रतारा, अवलोकितेश्वर शकाथुवा, मंजुश्री आदि बौद्ध देव-देवियों की मूर्तियाँ शोभित हैं।

इसके बाद हम "नीमु" की तरफ अग्रसर हुए। वहाँ से लद्दाख राज्य के प्राचीन सर्वश्रेष्ठ शहर "वासगो" का ध्वंसावशेष देख लिया था। इसके

बाद हम नीमु में पहुँच गए थे। नीमु से बौद्ध लोग "ले" शहर में आते हैं और आगे सुप्रसिद्ध "हिमिस मठ" को जाते हैं। नीमु(३५२ ह. ले) ग्राम से आकर नदी पार होकर हम "पितुक" नामक स्थान में आए थे। वहाँ पहाड़ पर "फियाँ" नामक गुम्फा है। इस उपत्यका में "ले" शहर, "स्तोक" गाँव और सिन्धु नद सदृश मूल्यवान् सम्पद हैं। इसके बाद ही हम "ले" शहर में पहुँच गए थे। लद्दाख के अधिवासी करीब सब के सब कृषिजीवी हैं। धनियों को छोड़कर सब गरीब परिवारों में एक ही परिवार के सब भाई मिलकर एक स्त्री से विवाह करते हैं।

(३५३ह.ले.) लद्दाख प्रान्त के करीब सब ही गुम्फा, मठ, मन्दिरों में हमने किसी-किसी सिद्ध योगी पुरुष से मिलना चाहा था। त्यागी सन्न्यासियों का भी अनुसन्धान किया था। दुर्भाग्यवश हमको कोई भी नहीं मिला। योगी नाम सुनकर जिन-जिन से वार्तालाप किया था, वे सब कोई प्रेत पूजा के तन्त्र मन्त्रों को ही योग विद्या के उपाय समझते हैं। साधु (३५४ह.ले.) सन्न्यासी बोलने से बुद्ध-मन्दिर के पुरोहित ही समझे जाते हैं। बाहर से कोई भी वहाँ जाय तो वह सन्देह का पात्र बन जाता है। मुसलमानों को मठ-मन्दिर, मूर्ति और विहार ध्वंस करने के कारण शत्रु ही समझते हैं। विदेशी ईसाइयों को खृष्टान राज्य विस्तार करने के अग्रदूत समझते हैं। हमको भी इन्होंने पहले-पहले गुप्त ईसाई समझ लिया था। वहाँ से हमने हिमिस गुम्फा के बारे में सुना था। तिब्बत की (३५५ ह.ले.) सर्वश्रेष्ठ गुम्फा बोलने से "हिमिस" गुम्फा ही समझा जाता है। हम लद्दाख प्रान्त के "ले" शहर को छोड़कर हिमिस गुम्फा जाने के लिए तैयार हो गए। मेरे साथ जितने बौद्ध साधु आये थे यह लोग एक वर्ष के लिए लद्दाख में ही रह गए।

"ले" शहर से हिमिस गुम्फा—यह गुम्फा "ले" शहर से तीन योजन पूर्व दिशा में हैं। बगल में ही (३५६ ह.ले.) "स्तोक" नामक गाँव में लद्दाख के शेष राजवंशधर बहुत ही विलासिता और कर्ज से बंधे हुए रहते हैं। पहाड़ी मार्ग छोड़ कर हम मैदान के रास्ते से हिमिस की तरफ रवाना हो गए। मेरे साथ और दो बौद्ध साधु थे। हम लोग वहाँ पहुँच गए थे। वहाँ के भिक्षु लोग बहुत ही खुश हुए थे।

लद्दाख देश में—लामा मुझको देख कर ही बहुत आदर के साथ हिमिस मठ दिखाने को भीतर ले गये थे। करीब पाँच-छः बीघे भूमि पर (ह. ले. पृ. ३५७) बहुत कुछ देखा था। डेढ़ सौ भिक्षु अपने-अपने अलग-

अलग कक्षों में रहा करते हैं। ऊँचे घर में मठाधीश (खाँपो) रहते हैं। तिब्बती भाषा को छोड़कर थोड़ी-थोड़ी हिन्दी और अंगरेजी भाषा भी जानते हैं। उनसे तिब्बत और बौद्ध धर्म के बारे में वार्तालाप शुरु हुआ, उनके मुख से आश्चर्यकर समाचार मिला।

ईसामसीह भारत में आये थे—मठाधीश से समाचार मिला कि—"(ह. ले. पृ ३५८) ईसा धर्मज्ञान-लाभ के लिए भारत में आये थे। इसके बारे में इसके पाठागार में हस्तलिखित पोथी में विस्तृत विवरण है। यहाँ की पोथी तिब्बती भाषा में अनूदित है। मूल पोथी पाली भाषा में मासा के समीप 'मारबुर" नामक मठ से सुरक्षित है। उस पोथी में १४ परिच्छेद और २४४ श्लोक हैं मैं उन श्लोकों को अनुवाद करके ले आया था। उसका साराँश यहाँ बोला जायेगा।" मठाधीश लामा ने आगे कहा था कि भिन्न-भिन्न समयों में असंख्य बुद्धों ने जन्म लिया था। करीब पौने तीन हजार वर्ष पहले राजपुत्र शाक्य मुनि बुद्ध रूप में आविर्भूत हुए थे। इनके हर एक के बारे में ही कुछ न कुछ (ह. ले. पृ. ३५९) बौद्ध मठों में कुंचित और वेष्टनी कागजात में लिखा हुआ है। कम से कम ४८००० लिखित कागज मिलते हैं। मौलिक कागज भारत से नेपाल में और नेपाल से तिब्बत में लाया गया था। इस रूप से धर्म-प्रचारक ईसा की जीवनी भी तिब्बत में लायी गई थी। इस मठ में यह जीवनी मौजूद है। इसका सारांश मेरे पास है :—

वेदपन्थी ईसा की जीवनी—करीब दो हजार वर्ष पहले इस्राइल देश में गरीब माता-पिता के घर में ईसा का जन्म हुआ था। तेरह वर्ष की अवस्था में प्रचलित प्रथा के अनुसार जब ईसा का विवाह होने वाला था तब ईसा घर से वणिक् दलों के साथ सिन्धु देश में पहुँच गया था। चौदह वर्ष की अवस्था में (ह. ले. पृ. ३६०) ईसा भारत के निवासियों के साथ सिन्धु देश में ही रहने लगा था। जब ईसा ने पंजाब और राजपूताना में प्रवेश किया था और वहाँ के भगवद्-भक्तों के साथ रहने लगा। तब जैन लोग उनको अपने अन्दर रख नहीं सके। ईसा अब उड़ीसा के जगन्नाथ क्षेत्र में पहुँच गया था। वहाँ के पण्डित लोगों ने वैदिक ज्ञान प्रदान किया था और आत्मोन्नति का यौगिक कौशल भी सिखा दिया था। ईसा छः वर्ष तक जगन्नाथ में, काशी में और भिन्न २ तीर्थ स्थानों में भ्रमण करते हुए वैदिक-ज्ञान-संचय करने लगा। साधारण जनता ईसा को बहुत ही

प्रेम-प्रीति की दृष्टि से देखने लगी, क्योंकि वे विशेष रूप से वैश्य और शूद्र-लोगों के साथ ही रहा करता था और इन्हीं को ही वेद-विद्या सिखाता था। इस कारण से ब्राह्मण और क्षत्रिय लोग ईसा के प्रति रुष्ट हो गये थे।
(पंचम अध्याय में वर्णन)

ईसा की शिक्षा—(ह. ले. पृ. ३६१) अब ईसा धर्म-प्रचार करने लग गये। साधारण जनता ईसा के ज्ञान, बुद्धि और धर्म-प्रवीणता के कारण उनके प्रभाव में आयी थी, क्योंकि वैश्य और शूद्रों के अन्दर उनका शान्ति-पूर्ण व्यवहार अति चित्ताकर्षक था। ये वैश्य और शूद्रों को वेद-विद्या की शिक्षा देते थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय लोगों ने इसका निषेध किया था। क्योंकि वेद-ज्ञान के लिये ये लोग अनधिकारी हैं। ईसा ने इस निषेधाज्ञा को स्वीकार नहीं किया और ब्राह्मण क्षत्रियों के इस अन्याय आदेश के विरोध में प्रचार करने लगे थे। वेद में सभी मानव-सन्तानों का समान अधिकार है। ईश्वर में किसी सन्तान के प्रति भेदभाव नहीं है। गरीबों को मदद पहुंचाओ, दुर्बलों की रक्षा करो, किसी की भी हानि मत करो, जो वस्तु तुम्हारी नहीं है उसके प्रति लालच मत करो।
(चतुर्थ अध्याय में)

(ह. ले. पृ. ३६२) जब ब्राह्मण और क्षत्रिय लोग निरुपाय होकर ईसा को जान से मारने के लिये तैयार हो गये तब शूद्र लोगों ने ईसा की रक्षा के लिए सहायता की थी। ईसा जगन्नाथ क्षेत्र को छोड़कर दूसरे स्थानों में जाकर प्रचार करने लगे। (सप्तम अध्याय में)

चारों तरफ ईसा के नाम और यश का प्रचार होने लगा। ईसा फारस देश में पहुँचे। वहाँ भी पुरोहित लोग ईसा के मतों के विरोधी बन गये थे। दूसरी तरफ धीरे-धीरे जनसाधारण ईसा के अनुरागी बनने लगे। प्रधान पुरोहित के पास ईसा के विरुद्ध अभियोग चलाया। ईसा को विचारालय में हाजिर किया गया। ईसा के वक्तव्य सुनकर प्रधान विचार-पति या प्रधान पुरोहित ने ईसा को छोड़ दिया। (अष्टम अध्याय में)

ईसा वहाँ से ईस्राइल में पहुँच गये। वहाँ धर्म और राष्ट्र के नाम पर अमानुषिक अत्याचार चल रहा था। जनसाधारण ईसा को वेष्टित करके खड़े हो जाते थे। मन्दिर के नाम पर वहाँ प्रबल अत्याचार चालू था। ईसा ने उपदेश दिया "ईश्वर मनुष्य-निर्मित मन्दिरों को मन्दिर ही नहीं समझते हैं। मानव-हृदय ही हम सबके सच्चे मन्दिर हैं। सद् भावना सुचिन्ता और सत् आदर्श के द्वारा उन मन्दिरों को अधिकतर उज्ज्वल करो।

भगवान् में विश्वास रखो। धैर्य रखो। ईश्वर तुम्हारे लिये कल्याण करेंगे। हृदय को पवित्र रखो। हृदय को जंजाल, कूड़े, झंझट, बखेड़ा और फसाद से मुक्त रखो। ये तुम्हारी ही वस्तुयें हैं। तुम इनको शुद्ध नहीं रखोगे तो कौन रखेगा ? इसलिए ही मन, प्राण, हृदय को सद्गुण और पवित्र ईश्वर-प्रेम और सद्भावनाओं से पूर्ण करके रखो। (ह. ले. पृ. ३६३) जिससे ईश्वर में अविश्वास और कुभावनाओं के वहाँ रहने के लिये जगह न रहे। (नवम अध्याय में)

ईसा के उद्देश्य :—अब तो ईसा इस्राइल के भिन्न-२ शहरों में धर्म प्रचार करते हुए घूमने लगे। रोम-शासन के पीडन से बचने के लिए सर्व-साधारण के अन्दर जागृति पैदा हुई थी। नगरों के प्रधान पुरुष सब कोई दूर हो गए थे। यरुशलम में जाकर प्रधान शासक पाईलेट के पास ईसा के बारे में उन्होंने सब कुछ निवेदन किया। पाईलेट ने ईसा को गिरफ्तार करने और मंदिर में यहूदी पुरोहितों से विचार करवाने का आदेश दिया। ईसा धर्म-प्रचार करते हुए यरुशलम में ही पहुँच गये। ईसा की कीर्ति और महिमा सुनकर सब वहाँ मुग्ध थे। मन्दिरों में ईसा के उपदेश होने लगे। ईसा के उपदेश में सुना गया था "तुम लोग जरूर अन्धकार से मुक्त हो जाओगे। तुम लोगों के सम्मिलित हो जाने से तुम्हारा दुश्मन डर के मारे कांपने लगेगा।"

पुरोहितों ने उपदेश सुना था और उन्होंने ईसा से पूछा भी था—कि "क्या आप शासन-कर्त्ताओं के विरुद्ध प्रचार करते हैं ? शासन-कर्त्ता के पास ऐसा ही संवाद पहुँचा है।"

ईसा ने कहा—"आप लोगों ने क्या नहीं देखा कि विश्वप्रभु के विरोध में शक्तिमान् और धनाढ्य लोगों ने इस्राइल के अधिवासियों के अन्दर पापों की क्रान्ति फैलादी हैं ? मैं इस्राइल का अधिवासी हूं। मेरे (ह. ले. पृ. ३६४) देशवासी पापों में डूबे हुए हैं। मैं मूसा व गमूर का विरोधी नहीं हूं। मूसा के प्रकृत धर्म का देशवासियों के अन्दर प्रचार करना चाहता हूं। मैं हृदय-मन्दिर से पापों के दाग को धोना चाहता हूं।" (दशम अध्याय में)

शासक पाईलेट के पास पुरोहितों का निर्णय चला गया कि ईसा धर्म-प्रचार करते हैं, और कुछ नहीं। इस संवाद पर पाईलेट ने विश्वास नहीं किया। उन्होंने गुप्तचर नियुक्त किये। ईसा का धर्म-प्रचार भी चालू ही रहा। (एकादश अध्याय में)

पाईलेट के एक गुप्तचर ने जाके ईसा से पूछा--क्या हम लोग सीजर के शासन को मानते रहेंगे या उससे भविष्य में मुक्ति की आशा करेंगे ?" ईसा ने जबाब दिया—"मैंने आप लोगों से कभी नहीं कहा कि आप लोग सीजर के शासन से मुक्त हो जायेंगे। पापों में डूबी हुई आत्मा ही पापों से मुक्त हो जायेंगी। कर्त्ता के बिना परिवार नहीं चलता और शासनकर्त्ता के बिना देश नहीं चलता।"

गुप्तचर ने ईसा से पूछा—क्या सीजर के अन्दर ऐसी शक्ति और भगवान् से प्रदत्त अधिकार है ? क्या सीजर सर्वोत्तम पुरुष है ?

ईसा ने जबाब दिया— मानवों के अन्दर कोई एक व्यक्ति सर्वोत्तम नहीं हो सकता। अधम व्यक्तियों की संख्या ही अधिक है। अधमों की चिकित्सा के लिए धर्म-प्रचारकों की जरूरत है। उसी के अधिकार में दया और सुविचार करने का सुयोग सबसे अधिक है। यदि सीजर इस सुयोग का सदुपयोग करें तो उनका नाम धन्य हो जायेगा। यदि इस सुयोग का दुरुपयोग किया जाये तो साधारण की दृष्टि में पतित हो जायेंगे। (ह. ले. पृ. ३६५) (द्वादश अध्याय में)

ईसा की गिरफ्तारी—साधु ईसा ने इस रूप से इस्राइल के अधिवासियों के अन्दर सर्वत्र तीन वर्ष तक धर्म-प्रचार किया था। शासक के गुप्तचर लोग ईसा के पीछे-पीछे ही घूमने लगे। शासक के मन में शान्ति नहीं रही क्योंकि ईसा की लोकप्रियता दिन पर दिन बढ़ने लगी। शासक भयभीत हो गये कि अतिशीघ्र ईसा प्रजा (ह० ले० पृ० ३६६)-विद्रोह के द्वारा रोम का शासन उलट देगा। उन्होंने अभियोग चलाने के लिए परामर्श दिया और ईसा की गिरफ्तारी के लिए सैन्य भेज दिया। प्राण-दण्ड देने के लायक स्वीकारोक्ति मुख से निकालने के लिए कठोर अत्याचार करने के लिये भी निर्देश दिया गया था। ईसा पर अमानुषिक अत्याचार किये जाने लगे। प्रधान पुरोहित और ज्ञानवान् पुरुषों ने दयार्द्र होकर शासक से ईसा की बन्धन-मुक्ति की प्रार्थना की थी, ताकि जातीय उत्सव के रोज ईसा सबके साथ सम्मिलित हो सकें। शासक ने प्रार्थना मंजूर नहीं की। प्रधान पुरोहित और सबने प्रार्थना की थी कि जातीय उत्सव से पहले ही मृत्यु दंड हो या मुक्ति हो, विचार समाप्त हो जाये।"

(त्रयोदश अध्याय में)

ईसा का विचार—शासक ने दूसरे रोज ही विचार सभा का आह्वान किया था। सभा में प्रधान पुरुष गण, पुरोहित गण, विचारक गण

और विशेषज्ञ गण सम्मिलित हुए थे। (ह. ले. पृ. ३६७) दस्युओं के बीच रख कर विचारक के सम्मुख बैठाया गया था ताकि केवल ईसा को ही प्राण दंड नहीं दिया जायेगा ऐसा ही लोग समझ पावें।

प्रश्नोत्तर—शासक पाइलेट ने ईसा से पूछा—"क्या यह बात सच्ची है कि तुम खुद ईस्राइल के राजा होने के लिये वर्तमान शासन के विरुद्ध जनसाधारण को उत्तेजित कर रहे हो।"

ईसा ने कहा—अपनी इच्छा से कोई भी राजा नहीं बन सका है। आपसे लोगों ने यह मिथ्या ही कहा है। मैंने केवल स्वर्गीय राजा के बारे में ही प्रचार किया है और केवल उन्हीं की पूजा के लिये ही कहा है।—क्योंकि इस्राइल के सन्तानपूर्व पुरुषों के धर्म को भूल गये हैं। यदि ये लोग सत्य ईश्वर की तरफ वापस नहीं आते तो ये ध्वंस हो जायेंगे और इनके मन्दिर भी विनष्ट हो जायेंगे। मैंने इनसे कहा कि तुम लोग अपनी स्थिति के अनुसार चलो, सर्वसाधारण की शान्ति को तोड़ो मत। मैंने उनको अपने-अपने हृदय और चित्तों के चांचल्य के बारे में स्मरण दिलाया था। इस कारण से ही परमप्रभु ने तुम्हारी (३६८ ह.ले.) जातीयता का विनाश करवा दिया और तुम्हारे देश के शासन को छीन लिया। यदि तुम लोग फिर परम प्रभु में आत्म-समर्पण करोगे तब तो स्वर्ग राज्य तुम्हारा ही हो जायेगा।"

ठीक इसी समय पूर्व प्ररोचना के अनुसार एक साक्षी ने कहा—"तुम तो जनता से इस बात को भी कहा करते थे कि तुम विधर्मियों के बन्धन से ईस्राईल के अधिवासियों को मुक्त कर दोगे।"

ईसा ने कहा—"हमने ठीक ही कहा था कि विश्व के परमप्रभु पृथिवी के राजाओं से ऊपर हैं। अदूर भविष्य में ही उस प्रभु की शरण में आकर ईस्राइल पाप के बन्धन से मुक्त हो जायेगा। एक अग्रदूत शीघ्र ही आकर सबकी ही मुक्ति घोषित कर देगा।"

अब शासक ने विचारकों से कहा —"आप लोगों ने तो सुन ही लिया कि ईस्राइल के अधिवासी (३६९ ह० ले०) ईसा ने स्वयं ही अपने ऊपर लगाये हुए अभियोग को स्वीकार कर लिया है। अब आप लोग कानून के अनुसार विचार करके इसको मृत्यु दण्ड का आदेश दीजिये।"

पुरोहित और विज्ञ लोगों ने कहा—"आपने भी सुना है कि इन्होंने परम प्रभु के बारे में ही कहा है और इन्होंने आईन के विरोध में कुछ भी प्रचार नहीं किया।"

अब शासक ने दूसरे एक साक्षी को बुलवाया जिसको उसके प्रभु पाईलेट ने खुदघूस देकर वशीभूत कर रखा था,जिससे यह ईसापर विश्वास-घात कर सके। उसने ईसा से कहा—"क्या यह बात सत्य है कि आपने अपने को ईस्राइल का राजा घोषित किया था और कहा था कि परमप्रभु ने ही आपको जनसाधारण की तैयारी के लिये भेजा है ?"

ईसा ने उस आदमी को आशीर्वाद दिया और कहा—'तुम इस वाक्य को अपने अन्तर से नहीं कह रहे हो। इसलिये तुम (ह. ले. ३७०) भगवान् की दया से वंचित नहीं रहोगे।"

शासक की तरफ दृष्टि देकर उन्होंने कहा—"आप अपनी मर्यादा को क्यों नष्ट करते हैं ? क्या इस उपाय को छोड़कर आपके हाथ में निर्दोष व्यक्ति को दण्ड देने की शक्ति है ?

ईसा की इस उक्ति को सुनकर क्रुद्ध पाइलेट ने ईसा के लिये मृत्यु दण्ड दे दिया और दो दस्युओं को निर्दोष घोषित करके मुक्त कर दिया।

विचारकों ने आपस में बातचीत करके पाईलेट से कह दिया "आप के इस पाप के हम भागीदार बनना नहीं चाहते हैं। निर्दोष को दण्ड-दान और दोषी को मुक्तिदान यह हमारे कानून से बाहर है। आप जो चाहें करें।

यह कहकर विचारक विचारालय से बाहर चले गये।

(त्रयोदश अध्याय में)

शासक के आदेशानुसार फौजों ने ईसा को और दो डाकुओं को पकड़ लिया, इन्हें बध्य भूमि में ले जाया गया और काष्ठ-स्तम्मों पर लटका के लोहे की कीलों से घायल करके लटका दिया गया। दिन भर ईसा और दोनोंडाकुओं के शरीर लटके रहे थे। (३७१ह.ले.)शरीरों से रक्त-पात होने लगा था। जनता और दंडित व्यक्तियों के सम्बन्धी लोग वध स्तम्भों के चारों ओर खड़े हो देख रहे थे और प्रार्थना करने लगे थे। शाम को ईसा अचेतन हो गये और देह को छोड़ दिया।

पाईलेट अपने आप को याद करके भयभीत हो गये थे। ईसा के मृत देह को उनके सम्बन्धियों को देने के लिए आदेश दिया। सम्बन्धी लोगों ने उस मृत देह को बध-स्तम्भ के पास कबर में रख दिया था। बहुत आदमी उस कबर को देखने के लिये आने लगे थे। सब कोई चारों तरफ से रोने लगे थे। तीन रोज के बाद शासक ने उस मृत देह को वहां से उठवा के अन्यत्र कबर में रखने का आदेश दिया था। उन्होंने जन-साधारण के विद्रोह की आशंका की थी। जब दूसरे रोज आदमी लोग

कबर के पास आये थे तब देखा कि कबर खुली ही है और खाली है। ईसा का देह वहाँ से कहीं (३७२ हल्लें.) चला गया है। चारों तरफ उड़ती खबर चली कि जगत् के परम-विचारक ने वहाँ से उस मृत देह को हटवाने के लिये स्वर्गीय दूतों को भेजा था क्योंकि उस देह में ही वे आंशिक रूप में निवास करते थे।

जब पाईलेट ने इस जनश्रुति को सुना था तब रुष्ट होके आदेश प्रचारित कर दिया कि ईसा का नाम लेने से या उसके लिये प्रार्थना करने से मृत्यु-दंड दिया जायेगा, तो भी जनसाधारण ने ईसा की मृत्यु पर रोना और प्रार्थना करना बन्द नहीं किया। जिससे बहुतों को कारा-दंड या मृत्यु दंड मिला। चारों तरफ इसी रूप से ईसा की महिमा का प्रचार होने लगा था। (चतुर्दश अध्याय)

हिमिस-मठ के बड़े लामा ने यहां तक जीवन के बारे में उस ग्रन्थ से पढ़-पढ़ के टूटी फूटी हिन्दी में जैसा सुनाया था❀ उसका सारांश मैंने आपकी सेवा में रखा है। (३७३ह.ले) तिब्बत के लामाओं ने कहा था कि ईसा किसी प्रकार कबर से मुक्त होकर छिपे हुए कश्मीर में आये थे। वे तथागत बुद्ध या गौतम बुद्ध की तरह "ईसा-बुद्ध" नाम से प्रचरित थे। जीव बहुत जीवनों में साधना करते-करते "बोधि-सत्त्व" बन जाते हैं और वे साधना करते-करते आगे जाकर बुद्ध बन जाते हैं। ईसा इसी रूप से ही 'बुद्ध" बन गये थे। ईसा बहुत शिष्यों के साथ काश्मीर के मठ में रहते थे। उनके दर्शन के लिए देश-देशान्तर से भक्त लोग आया करते थे और उनके शिष्य बनकर जीवनों को धन्य मानते थे। उस समय तिब्बत के रहने वाले, जिन्होंने ईसा को अपनी आँखों से देखा था और जिन वणिक् लोगों ने दंड प्राप्त ईसा को वध-स्तम्भ में देखा था उन्हीं के (३७४ ह०ले०) मुख से सुन-सुन कर ईसा की मृत्यु से तीन चार वर्षों बाद सर्वप्रथम ईसा की जीवनी पाली भाषा में लिखी गयी थी। यहाँ की पुस्तक मूल पुस्तक

❀ **सम्पादक का मन्तव्य**—हिमिस मठ में ईसा के जीवन सम्बन्धी इस ग्रन्थ को भिन्न-भिन्न समयों में और भी दो व्यक्तियों ने देखा था। महर्षि दयानन्द के पश्चात् करीब दस वर्ष बाद रूस-देशीय परिव्राजक निकोलास नटवीच ने और करीब तिरेसठ वर्ष बाद रामकृष्ण वेदान्त मठ के अधिष्ठाता स्वामी अभेदानन्द ने भी देखा था। महर्षि दयानन्द ने ही इसको सबसे पहले देखा था।

की नकल है। न मालूम वह पुस्तक कहाँ हैं। कोई कहते हैं कि ईसा योगी सन्न्यासी के रूप में भारत के आबू पर्वत में भी आये थे।

हिमिस गुफा से श्रीनगर—वहाँ से "ले", लिकिर गुफा, कार्गिल और शालीमार बाग होके एक बौद्ध साधु के साथ हम श्रीनगर चले आये थे।

श्रीनगर से ऋषिकेश में—श्रीनगर में शैवतान्त्रिकों से परिचय हुआ। श्रीमत् स्वामी गंगागिरि से मेरी घनिष्ट मित्रता हो गई थी। हम दोनों ने एक साथ लगभग दो महीने❀ भिन्न-भिन्न तीर्थों में भ्रमण किया था।

धनुष तीर्थ होके हम दोनों आधा-योजन दूरी पर अगस्त्याश्रम गये थे। इससे पहले रुद्र प्रयाग भी होके आये थे। अलकनन्दा (३७५ ह०लें०) और मन्दाकिनी का संगम-स्थल है। ऋषीकेश से रुद्र प्रयाग ११ योजन है और केदार नाथ ८ योजन है। रुद्र-प्रयाग से अगस्त्याश्रम आधा-योजन और गुप्त-काशी भी आधा योजन दूरी पर है। मन्दाकिनी के उस पार सामने ही ऊषी मठ है। रामपुर भी नजदीक है। रुद्र-प्रयाग से त्रियुगी-नारायण आधा योजन से ऊपर है। यहाँ चार कुण्ड हैं—ब्रह्म-कुण्ड, रुद्र-कुण्ड विष्णु कुण्ड और सरस्वती कुण्ड। गौरी-कुण्ड भी रुद्रप्रयाग से आधा-योजन है। इन सब तीर्थ स्थानों में भ्रमण करके हम दोनों (गंगागिरि और मैं) ऋषीकेष में पहुँच गये थे।

ऋषिकेश से मानसरोवर—अनुकूल ऋतु में ऋषिकेश से रवाना होके हम देहरादून आये। वहां से यमुनोत्तरी, उत्तरकाशी और गंगोत्तरी आये थे। वहां से डेढ़ योजन दूरी पर गोमुखी है। शीतकाल में यह स्थान बरफ से आच्छन्न हो जाता है। वहाँ केदार गंगा में आकर गोमुखी (गंगोत्तरी में) से बहती हुई गंगा मिल गयी है। गौरी कुंड इसी का नाम है। गोमुखी से उतर कर तीन रोज★की यात्रा में गंगोत्तरी मिलती है। (गंगोत्तरी से त्रियुगी-नारायण आधा योजन और केदारनाथ तीन योजन की दूरी पर हैं। वहाँ से आगे अगस्त्य मुनि और गुप्तकाशी हैं। उससे आगे केदारनाथ और जोशी मठ है। यहाँ से बीती घाटी होकर तीर्थ यात्री लोग मानसरोवर और कैलास जाते हैं। इन सब स्थानों पर होकर हम बदरी-

---

❀ इन दो मासों का और अगला अलखनन्दानुसन्धान मात्र ही थ्यासोफिस्ट में दिया है। विदेशियों को अधिक दे ही नहीं सकते थे।—सं०

★ साधारणतया यात्रियों को तीन लगते हैं। ऐसा भाव प्रतीत होता है। स०

नाथ आये और वहां से ब्रह्म कुंड, वसुधारा, सतपथ, भागीरथी अलखनन्दा का संगम स्वर्गारोहण शिवर, *अलकापुरी शिखर और मानसोदभेद तीर्थ आ गये थे। वहां से हम दोनों मानसरोवर जाने वाले तीर्थ यात्री लोगों से मिल गये थे। इस यात्रा में तीन सप्ताह से भी कुछ अधिक समय तिब्बत में ही भ्रमण करना पड़ा था। गुप्तचर लोग भी यात्री लोगों में सम्मिलित हो जाते थे। यह यात्रा बहुत ही कठिन और दुष्कर थी। सभी जगह मठ-मन्दिर हैं लेकिन योग-शिक्षक नहीं मिले थे।

मानसरोवर से कैलाश—तिब्बत के अन्दर करीब चार योजन पैदल आने पर मानसरोवर★और राक्षस ताल नाम के दो सरोवर मिले। पार्वत्य संकीर्ण भूमि से संयुक्त होकर भी दोनों सरोवर 'मानसरोवर' नाम से ही प्रसिद्ध हैं। इसके किनारे योग-साधकों के स्थान हैं। वहाँ से करीब तीन योजन दूरी पर कैलास है। कैलास की आकृति बृहत् शिवलिंग जैसी है। कैलास सी परिक्रमा चार योजन की है। कैलास में ऐसे स्थान हैं। साधक जिनमें योगस्थ बन कर बैठे हैं। उनमें कोई-कोई जीर्ण कंकाल के रूप में हैं और कई एक तो मृत देह के रूप में देखे गये थे। वहाँ साधना में निमग्न योगी लोग किसी को योग-विद्या की शिक्षा देने के लिये तैयार नहीं हैं।

कैलास से ल्हासा—कैलास से मानसरोवर के किनारे आकर हम ल्हासा जाने के लिये तैयार हो गये थे। वहाँ से व्यापारी कारबार की सामग्री पशु-वाहनों से ढोकर करीब अस्सी योजन दूरी पर ल्हासा में जाते

---

*जिस पहाड़ पर पुरानी अलकापुरी थी उस पर भी मैं इस विचार से गया था कि एक बार ही अपना शरीर बर्फ में गलाकर संसार से निवृत्त हो जाऊँ, परन्तु वहाँ पर पहुँचकर विचार में आया कि इस जगह पर मर जाना तो कोई पुरुषार्थ नहीं है।" इत्यादि उपदेश मंजरी —११६ पृ० दसवाँ व्याख्यान।

★ इस अज्ञात जीवनी के छपने से दो वर्ष पूर्व स्वा० प्रेरणानन्दजी ने बताया कि मसूरी में एक बंगाली ने श्री प्रभु आश्रित जी को बताया था कि ऋषि मानसरोवर गये थे और उनमें आकाशगमन की सिद्धि भी थी शिवजी कैलास के रहने वाले थे। कुबेर अलकापुरी के रहने वाले थे।

काश्मीर से नेपाल तक हमारा सब देश घूमा हुआ है। देखो—उपदेश-मंजरी दशम व्याख्यान।

हैं। हम दोनों भी उन व्यापारियो में सम्मिलित होकर ल्हासा की तरफ जाने लगे थे। हम भगवान् के भजन गाते थे। विश्राम स्थलों में सत्संग लगाते जाते थे। बौद्ध भिक्षु लोगों से मेरी बहस होजाती थी। वे लोग केवल बुद्ध को ही सब कुछ मानते हैं और ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं करते हैं। कारवारी गृहस्थ बौद्ध लोग हमसे कभी-कभी सहमत हो जाते थे। इससे बौद्ध भिक्षु लोग मेरे प्रति और मेरे साथी स्वामी गंगागिरि के प्रति रुष्ट हो गये थे। क्रमशः हमारे प्रति उनकी शत्रुता बढ़ती ही गई।

प्राण-दंड से दंडित और निर्वासन—किसी बड़े शहर में वहां के धर्म गुरु लामा के पास हम दोनो के विरुद्ध धर्म-निन्दा और बुद्ध के प्रति तिरस्कार करने की नालिश कर दी गयी थी। हम दोनो गिरफ्तार होके अन्धेरे कारागार में कैद रहे। तीसरे रोज लामा के विचार से हम दोनों को प्राण-दंड सुनाया गया। विचार-समय हम से पूछा गया था—"क्या "बुद्ध" आदमी है या केवल "बुद्ध" ही हैं?" हमने जवाब दिया था—"बुद्ध महापुरुष हैं। बुद्ध हैं और आदमी हैं।" गंगागिरि का जवाब भी ऐसा ही था। दोनों के प्रति प्राण-दंड का आदेश दिया गया था। दोनों के शरीरों में सैंकड़ों जौंक लगाये गये थे। दोनों ही अलग-अलग वध-स्थानों में लाये गये थे और दोनों के उपाय भी अलग-अलग ही थे। गंगागिरि को "याक" नाम के किसी वन्य गाय के चमड़े से आच्छादित करके सिलायी की गयी थी और मृत्यु तक वह दिन भर धूप में और रात्रि भर ठण्ड में भूखे रखे गये थे और मैं मृत्युदण्ड प्राप्त शवदेहों से परिपूर्ण एक गम्भीर कुएँ में भूखा मारने के लिये फेंक दिया गया था। इस भयंकर दृश्य को देखती हुई, वहाँ की देवियाँ रोने लगीं। दूसरे दिन देवियों ने दयार्द्र हो कर गंगागिरि को छुटकारा दे दिया था और मुझको कुएँ से निकालने के के लिये मोटी रस्सी ऊपर से गिरा दी थी। मैं उस रस्सी को पकड़ कर तीसरे रोज ऊपर आ गया था। दोनों ही देवियों की दया से उद्धार प्राप्त कर चौथे रोज दूसरे-दूसरे व्यवसायियों के साथ ल्हासा की तरफ रवाना हो गये थे। पुरुषों ने हमको कानून के बल पर मारना चाहा था और देवियों ने करुणा के बल पर जीवन-दान दिया था। इस बात को हमारे के लिए भूलना कठिन है। इस रूप से दो महीनों के अन्दर हम दोनों ल्हासा में पहुँच गये थे।

ल्हासा की बातें—ल्हासानगरी अति सुन्दर है। लेकिन नगरी में बाहर वालों के आने-जाने के लिये कठोर रूप से निषेध था। केवल साधुओं

के लिये कानून में कुछ ढीलापन था। ल्हासा शहर करीब एक यौजन लम्बा है चारों तरफ पर्वतों से घिरा है और किचु नदी के दक्षिण किनारे पर अवस्थित है। शहर के ठीक मध्य स्थान की उच्चभूमि पर "भियो" नाम का चतुष्कोण मन्दिर है। इसकी छत सोने से आच्छादित है। मन्दिर में बहुत तरह की मूर्तियाँ हैं। उनमें दो मूर्ति ही प्रधान हैं— एक शाक्य मुनि की और दूसरी "पल देन लामो" की, जो कि भारत की "काली माता" है। मूर्तियों के शरीर मूल्यवान् सोने और मणि-मुक्ताओं से अलंकृत हैं। यहाँ के आदमी कहते हैं कि भारत के शाक्यमुनि यहां आये थे। पहाड़ के पाद देश में तिब्बत के राजगृह हैं। यहाँ के राजा का नाम "गिय लिबो" है। अलग दूसरे उच्च पर्वत-शिखर पर "पोटाला या चाई" नामक प्रासाद में तिब्बतियों के सर्वप्रधान धर्म गुरु लामा रहते हैं। इनका नाम "कियामकुरि बोचि" है। ये ही तिब्बत के सर्वेसर्वा हैं। ल्हासा शहर के उत्तर में "गियां बुमोचि" नामक महावीर का स्मृति-स्तम्भ है। यहां इन्होंने एक लाख चीनी शत्रुओं का वध करके देश की स्वतन्त्रता की रक्षा की थी। तिब्बत के शासनविधानानुसार बड़े लामा ही राजा है। "गियालबो" हैं इनके प्रधान मन्त्री। ये भी लामा हैं। तिब्बत में सब भाई मिलकर एक स्त्री से विवाह कर लेते हैं।

तिब्बत की भाषा, धर्म, सामाजिक आचार

तिब्बत में तीन तरह की भाषाओं का प्रचलन है—बोध-काई, खाम काई, और दोयाग-काई। ल्हासा में राजधानी की बोध-काई में ही धर्म ग्रन्थादि लिखित हैं। यहाँ बौद्ध-धर्म प्रचलित है। बौद्ध-धर्म भी यहाँ दो तरह के हैं एक 'नांवा" और दूसरा "चिवा"। लामा को छोड़कर सब ही के शव "धो तो" नाम के पर्वत पर ले जाये जाते हैं और शवों को टुकड़े २ करके काटकर सम्बन्धी लोग मांस भक् चील, गीध कौये आदि पक्षियों को देने के लिये फेंक देते हैं। ल्हासा शहर के सब मठ, मन्दिर और धर्म गुरु लामाओं के आवास स्थानों को मैंने देख लिया था। योगी साधकों की भी तलास की थी। "ओं मणि पद्मे हुँ" मन्त्र के जप करने वाले साधु ही तिब्बत में योगी साधु नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रकृत योगी साधकों का दर्शन मुझे नहीं मिला। मैं ल्हासा छोड़कर दार्जिलिंग जाने के लिये तैयार हो गया था।

ल्हासा से दार्जिलिंग

ल्हासा से बहुत तिब्बती वणिक् कस्तूरी, चमरी-पुच्छ और मूल्यवान् प्रस्तर बेचने के लिये दलबद्ध रूप से दार्जिलिंग आते हैं और इनके साथ लामा लोग और भिक्षु लोग भी तीर्थ-भ्रमण के लिये दार्जिलिंग पहुँच जाते हैं। स्वामी रुद्रानन्द मेरे साथ आये थे। ल्हासा से "किचु" नदी पार होके हम लोग दक्षिण किनारे "नेता" नामक स्थान में आये थे। वहाँ से हम लोग स्याम्पो या ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तर तट में पहुँच गये। 'च्याकसाम' नामक गांव के बगल दुर्गम प्रस्तराकीर्ण पथ से आकर नदी पार होने के लिये पुल देखा। पुल और ज्यादा भयंकर था। दोनों तरफ दो मजबूत रस्सी के साथ तख्तेबन्धे हुए थे। सब ही तख्ते दैर्घ्य में और चौड़ाई में छोटे और संकीर्ण थे। तख्ते लम्बी रस्सी के साथ झूलते हुए बन्धे हुए थे। इस लिए एक से ज्यादा आदमी एक साथ उस पर से नदी को पार नहीं कर सकता। लोहे की की जंजीर दोनों तरफ स्तूपीकृत शिलाराशि के अन्दर प्रोथित काष्ठ दण्ड के साथ बन्धी हुई थी। पुल लम्बाई में एक सौ कदम था। उस के पार जाने के बाद हमने विश्राम करके "कायरा" नामकी पहाड़ी घाटी को अतिक्रम किया। घाटी से उस पार जाकर हमने "काम्-पापरत्सि" नामक स्थान में आकर विश्राम किया। ल्हासा से यहां आने में चार रोज लग गये थे। ग्रामों में फल-मूल जो कुछ मिलता खा लेते थे। इस रूप से हम दार्जिलिंग रवाना हो गये।

काम् पापरत्सि से न्यांकरत्सि

काम्पापरत्सि से दूसरे रोज हम ने न्यांकरत्सि में पहुँचकर विश्राम किया। बगल में 'पालति' नाम का सरोवर है। इसकी आकृति घोड़े के सुम जैसी है। एक छोटे पर्वत से यह सरोवर घिरा हुआ है। रास्ते में इतना बड़ा सरोवर नहीं देखा। पर्वत के ऊपर "दोरजिफ्यामो" नाम का मन्दिर है और वहां आदमियों का निवास स्थान भी है।

न्याकरत्सि से उपसि गांव

तीन रोज में न्याकरत्सि गांव से उपसि गांव में आकर मैंने चीनो लोगों का उपनिवेश देखा। वहां प्रवेश करने की अनुमति मुझको नहीं मिली थी। स्वामी रुद्रानन्द भी वहां नहीं जा सके। वहां हम लोग समभूमि के रास्ते से बहुत आराम के साथ आ गये।

उपसि से गियात्सि

उपसि गांव से नियं नदी के किनारे दो समान्तराल पहाड़ों के ऊपर

'गियात्सि' नामक अति मनोरम छोटे नगर को हमने देखा। इसके पूर्वी तरफ के पहाड़ पर एक बड़ा किला है और पश्चिमी तरफ के पहाड़ पर एक गुफा है जिसमें पांच सौ लामा अर्थात् धर्म गुरु निवास करते हैं। यहां चुरतान अर्थात् धर्म मन्दिर है जिसमें धर्म ग्रन्थ, मूर्तियां, और विभिन्न देव देवियों के पूजनार्थ उपकरण भी हैं।

गियात्सि से फारि

गियात्सि से तीन रोज में फारि नामक स्थान में हम रांगि को 'डयाग्कारपो, 'कालासर, 'काला शहर' 'छुटिआ' आदि स्थानों को अतिक्रम करके पहुँच गये थे। रास्ते में गर्म पानी का झरना देखा, काला शहर के बगल में 'कालासर' नामक सुन्दर सरोवर देखा। 'राम' नामक एक सरोवर भी देखा जिसका जल कई एक महीनों तक पक्की बरफ के रूप में रहता है। 'फारि' में किला है वहां से तिब्बतियों का पवित्र गिरि-शृंग "जेमोलारि" दिखाई देता है।

फारि से चुम्बी

फारि से दो रोज में हम चुम्बी नामक स्थान में आये, चुम्बी में सिक्किम के राजा गरमी के समय रहते हैं। यहाँ से थोड़ी दूर पर दो नदियां मिल गयी है। उस मिलित जलधारा का नाम ही "आमो" दरिया है। रास्ते में दो छोटे गाँवों में (रुपाखा नाम के गांव की गुफा में और दोंकारा गांव में) दो योगसाधक महापुरुषों का दर्शन किया।

इन दोनों साधकों के नाम हमको मालूम नहीं हुए। बौद्ध साधु नाम से ही इन दोनों का परिचय था। पातंजल योगदर्शन के अनुसार विभूतिपाद में जितनी विभूतियाँ हैं सब इन दोनों के आयत्त्व में आ गयी थी। हमारी प्रार्थना पर इन्होंने हमको क्रियात्मक रूप में कुछ प्रदर्शन किया था। कैवल्य लाभ के बारे में इन के उपदेश बहुत ही उपादेय थे। हमने समझा था-तिब्बत भूमि में दुर्गम स्थानों में भ्रमण करना बेकार ही रहा है लेकिन इन दो साधकों की संगत में आकर सारा परिश्रम सार्थक हो गया।

चुम्बी से इउक

चुम्बी से इउक तक हम पार्वत्य दृश्य देखते हुए और स्थान-स्थान पर विश्राम करते हुए पहुँच गये। यहां तक ही तिब्बत की सीमा है। इससे आगे भारत की सीमा आरम्भ होती है। तिब्बतीय गुप्तचरों ने बहुत कुछ पूछ ताछ करके हम दोनों को छोड़ दिया था। स्वामी रुद्रानन्द

के पास दतौन-काष्ठ काटने के लिये एक छोटी सी कुल्हाड़ी थी, उसको भारत में गुप्तचरों ने लाने नहीं दिया। अब हम भारत में पहुँच गये थे !

इउक से दार्जिलिंग

इउक से रबाना होके बौद्ध साधुओं के साथ स्थान-स्थान पर विश्राम करते हुए हम करीब पन्द्रह रोज के अन्दर दार्जिलिंग पहुँच गये थे। रास्ते में 'नाथा' 'चुमाकेन, और 'पीडाँग' आदि गांवों में भ्रमण करके योग-साधकों का अनुसन्धान किया था। "जिलेप" नामक उच्च पर्वतशृंग को पार करके 'नाथा' गाँव में आये थे। 'चुमकान' गाँव में बौद्ध भिक्षु लोगों ने तिब्बत का भ्रमण वृत्तांत हम से उत्साह और कौतूहल के साथ सुना। वहाँ से "पीड़ां" होके 'कालिम्पांग पहुँचे। यहां हाट और बाजार दोनों हैं। रविवार को यहाँ पैंठ लगती है। इस पैंठ में तिब्बत से व्यवसायी लोग मूल्यवान् पशमीना, कपड़े, कस्तूरी, कीमती पत्थर और हाथी के दांत बिक्री करके नमक खरीद कर ले जाते हैं। कालिम्पोंग में दो ईसाई पादरियों से वार्तालाप हुआ। ईसाई धर्म और हिन्दूधर्म के बारे में उनका विश्वास है कि करीब दो सौ वर्षों के अन्दर २ भारत के सब के सब शिक्षित पुरुष-नारियां ईसाई धर्म की शरण में आ जायेंगे। कालिम्पोंग और दार्जिलिंग दोनों स्थानों में ही इनका प्रबल प्रभाव देखा गया। दार्जिलिंग की 'भुटिआ' बस्ती में हिन्दू धर्म और ईसाई धर्म के बारे में हमने शंका-समाधान किया, दार्जिलिंग को हमने तिब्बत और भारत के बीच में व्यवसाय केन्द्र और पहाड़ी जातियों के अन्दर ईसाई धर्म-प्रचार के केन्द्र के रूप में देखा था, वहाँ के शिक्षित बंगाली लोगों में, पहाड़ी जातियों में, ईसाई धर्म का अबाध और प्रबल प्रचार हमारे देश और जाति के लिये हानिकारक है—इस तत्त्व को हमने अच्छे रूप से समझ लिया था। सब ही सज्जनों ने हमारी इस बात को स्वीकार भी कर लिया था। लेकिन उसका क्रियात्मक रूप नहीं देखा गया।

दार्जिलिंग से नाटोर

दार्जिलिंग से नाटोर के राजा के उच्चतम कर्मचारी से परिचय हो गया। हरिद्वार में नाटोर के राजा से घनिष्ठ सम्बंध स्थापित हुआ था। इन्होंने भी मुझको बाहर जाने के लिए आग्रह प्रकट किया था। इनका नाम था श्री रतन मणि लाहिड़ी। लाहिड़ी महोदय के साथ नाटोर आगया था। राजपरिवार के सब मनुष्य सन्तुष्ट थे। राजगृह में मैंने सात रोज राजधर्म और प्रजाधर्म के बारे में उपदेश दिया था। योगविद्या के बारे

में हम से क्रिया योग शिक्षा के लिए राजा बहादुर ने प्रार्थना की थी। हमने तपः स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान के सम्बन्ध में शिक्षा प्रदान की थी। ये सब अपने को धन्य समझने लगे।

नाटौर से बारीकपुर—हम वहाँ से गंगासागर जाने के लिये तैयार हो गये और स्वामी रुद्रानन्द जी के साथ प्रस्थान कर दिया। शिलिगुड़ी होकर हम दोनों बारीकपुर पहुँच गये थे। गंगा के किनारे हम दोनों वट वृक्ष के नीचे बैठ गये, लोग उपदेश लेने के लिये आने लगे। वहाँ के सैन्यावास से फ़ौजी लोगों ने अतिगुप्तरूप से कुछ कहना चाहा था। इस रूप से बातचीत करना हमें पसन्द नहीं आया। सैन्यावास में प्रवेश करना बाहर के आदमियों के लिए निषिद्ध है। हम सैन्यावास के सम्मुख एक बड़े वट वृक्ष के नीचे धूनी लगा के बैठ गये थे। सब ही प्रकार के आदमी हमसे उपदेश और आशीर्वाद माँगने के लिए आने लगे थे। सब ही का हम संक्षिप्त परिचय लिया करते थे। एक मंगल पांडे ने और दो फौजी आदमियों ने अपने को फौजी बोलकर परिचय दिया और रोते हुए कहा—"महाराज! सरकार ने एक विचित्र तरह की कारतूस व्यवहार करने के लिए भेजी है। सुना जाता है—इसमें गाय और सूअरों की चरबीमिली हुई है। उसको दांतों से काटकर लगाना पड़ता है। हम समझते हैं कि हिन्दु और मुसलमान दोनों का धर्म भ्रष्ट करने के लिए ऐसा प्रबन्ध किया गया है। जान देने के लिए हम बहुत से फौज के सिपाही तैयार हो गये हैं। हमारे पास कमल पुष्प और चपाती भी क्रान्ति के दूत के रूप में आकर धर्म युद्ध में तैयार रहने के लिए प्रेरणा दे गये हैं। जब युद्ध के लिये संकेत आ जायगा हम लोग हथियार के साथ उतर पड़ेंगे। हम लोग प्रकट विद्रोह की ठीक तारीख की प्रतीक्षा में हैं। मराठी नेता के या कुमारसिंह के आदेश पर ही युद्ध शुरु हो जायगा। आप हम सबको आशीर्वाद दीजिये। जिससे हमको धर्म युद्ध में दुश्मनों के प्राण लेने या अपने प्राण देने के लिए शक्ति मिल जाय।"

इन्होंने मुझे प्रणाम किया। मैंने आशीर्वाद दिया—"जीना और मरना दोनों ही धर्म के लिए ही हैं। साथ-साथ धर्म युद्ध में भी नियम और शृंखला की रक्षा करो। इससे विपरीत होने पर बड़े-बड़े जहाज भी डूब जाते हैं। भगवान् आपके हृदयों में शक्ति प्रदान करें।"

बारीकपुर से कलकत्ता

मैं बारीकपुर से कलकत्ता आकर शोभा बाजार के राजा के भवन

में तीन रोज रहा था। सायंकाल मेरा उपदेश गृहस्थाश्रम धर्म के बारे में होता था। उसमें केवल कर्मचारी लोग ही आया करते थे। राजा बहादुर के पास मैंने गंगा सागर जाने की इच्छा प्रकट की थी। उन्होंने तीन कर्मचारियों को मेरे लिए नियुक्त कर दिया। हम सब एक साथ मिलकर जलपथ से गंगा सागर रवाना हो गये।

कलकत्ते से गंगासागर

कलकत्ते से गंगासागर करीब आठ योजन दूरी पर है। अब वह स्थान द्वीप के रूप में हैं। वहाँ अति अल्प संख्यक साधु हमेशा रहते हैं। जहाँ अब मेला लगता है वहाँ ही समुद्र के साथ गंगा का पुराण मिलन-स्थान हैं। गंगा वहाँ से हट गयी और समुद्र से मिलने के लिये एक छोटी सी धारा ही देखी जाती है। मकर संक्रान्ति में और कार्तिक पूर्णिमा पर वहाँ हजारों नरनारी स्नान के लिए एकत्र हो जाते हैं। सारे भारत से भी साधु-सन्न्यासी और वैरागी लोग वहाँ एकत्र हो जाते हैं। आप लोग तो यहाँ के रहने वाले हैं। हम यहाँ आये थे केवल योगी साधक पुरुषों के सन्धान में। मेरी आशा पूरी नहीं हुई। वहाँ केवल स्नान के द्वारा पुण्य लेने के अपने गौरव के लिए, साथ ही अपनी-अपनी साधनाओं के प्रदर्शन के लिये और केवल मेला दर्शन के लिए ही लोग एकत्र होते हैं। हमने योगी साधक ढूँढ़ा था। एक ही योगी-साधक को मैंने पहचान लिया था। वे अल्प समय के लिए आये थे। किसी से भी उन्होंने बातचीत नहीं की।

गंगा सागर से नवद्वीप

मेरे साथ स्वामी रुद्रानन्द महाराज पूर्ववत् थे। दोनों कलकत्ते पहुँचकर नवद्वीप और शान्तिपुर गये थे। कार्तिकी पूर्णिमा में वहाँ मेला लगता है। नवद्वीप में तांत्रिक मूर्तियाँ सैकड़ों पूजी जाती हैं और भवतारिणी के मन्दिर के प्रांगण में सब मूर्तियाँ एकत्र की जाती हैं। मादक द्रव्यों का व्यवहार भी उसी रोज ज्यादा रूप से होता है। वैष्णव भक्त लोग भक्ति भाव से तीर्थ यात्रा के लिए वहाँ आते हैं। वैष्णव मत श्री चैतन्य महाप्रभु का और तान्त्रिक मत श्री कृष्णानन्द आगम-वागीश पण्डित का आज भी प्रतिद्वन्द्विता के रूप में वहाँ पर्वोत्सवों में देखा जाता है।

नवद्वीप से काम रूप

गंगा सागर और नवद्वीप होके कलकत्ता वापस आने के बाद काम-रूप—कामाख्या जाने का विचार हुआ, सुना जाता है कि तान्त्रिकयोगियों के लिए वह स्थान सिद्ध पीठ पवित्र तीर्थ है। शोभा बाजार के राजा ने

कामाख्या जाने के लिए भी जल-पथ-यात्रा का प्रबन्ध कर दिया था। स्वामी रुद्रानन्द महाराज कलकत्ते से पुष्कर तीर्थ-यात्रा के उद्देश्य से चले गये थे। मैं नौका-पथ से चारों आदमियों के साथ कामरूप चल दिया। कई एक रोज के बाद हम लोग 'पांडु तीर्थ' में पहुँच गये। ब्रह्मपुत्र नदी के समीप ही कामाख्या पहाड़ है। पहाड़ के दूसरे पास ही गौहाटी (राजा भगदत्त की राजधानी) और ब्रह्मपुत्र नद के केन्द्रस्थ गर्भ में छोटे पहाड़ पर उमानन्द शिव का मन्दिर है। चार सौ वर्ष पहले कामाख्या के इस मन्दिर को काला पहाड़ ने तोड़ दिया था। पुराने टूटे हुये मन्दिर की निशानी आज भी मौजूद है।

वर्तमान मन्दिर का कूचविहार के राजाओं ने ही पूर्ववत् निर्माण किया था। नये मन्दिर के उद्घाटन के दिन मन्दिर के सम्मुख एक सौ इक्यावन (१५१) ब्राह्मण बालकों का बलिदान दिया गया था। कामरूप गोपालपाड़ा, नवगाँव और शिवसागर जिलों से इन सब बालकों का संग्रह हुआ था। अर्थ-लोभ से और पुण्य की आशा से माता-पिताओं ने इन सब बालकों को बलिदान के लिये बेच दिया था। तब से विभिन्न पर्वों पर उस मन्दिर के सम्मुख नरबलि देने की प्रथा चालू हो गई है। कामरूप के अन्तर्गत कूचविहार के कोच राजा नर नारायण ने कामाख्या देवी के लिये इष्टक-मन्दिर निर्माण करवा के एक सौ चालीस की नरबलि के साथ मन्दिर का उद्घाटन-उत्सव सम्पन्न किया था। छिन्न मुंडों को अलग-अलग ताम्र पात्रों में रखकर देवी के सम्मुख रखा गया था। उनके भतीजे रघुदेव ने भी सन् १५८३ में हयग्रीव-मन्दिर का पुनर्निर्माण करके ब्राह्मणों को भूसम्पत्ति दान देकर उसके बदले सात सौ (७००) ब्राह्मणों को संग्रह करके बलिदान दिया था। इन छिन्न मुंडों को भी अलग-अलग ताम्र पात्रों में देव मूर्ति के सामने रखा गया था। आसाम के जयन्तीया राज्य में भी नरबलि का प्रचलन था अंग्रेज-राजदूत को भी पकड़ के जयन्तीया राज ने जयन्तीदेवी की मूर्ति के सम्मुख बलिदान दिया था इसी के कारण जयन्तीया राज्य को अंग्रेजों ने छीन लिया था। इस रूप से सुविधा के अनुसार ब्रिटिश प्रजाओं को पकड़-पकड़ के बलिदान दिया जाता था। आसाम के खासी पहाड़ में नरबलि की प्रथा प्रचलित थी।

कामाख्या पहाड़ का पूर्वनाम मयूर पहाड़ था। महाभारत युग के राजा भगदत्त के पिता नरकासुर ने उस पहाड़ को तन्त्रधर्म का केन्द्र

बनाया था। तबसे मयूर-पहाड़ "पंच-मकार" के आधिक्य के कारण "कामाख्या-पहाड़" बन गया है।

बहाँ योग-साधन-प्रणाली सीखने के लिये हम उस पहाड़ के ऊपर कामाख्या-मन्दिर में जाने वाले थे। रास्ते में और दो साथी जुट गये, एक गौहाटी के कमलाकान्त फुकान और दूसरे लोहित कुमार बड़ुआ। पहाड़ पर चढ़ते समय बहाँ के सुप्रसिद्ध योगी महाकाल बाबा की चर्चा चल रही थी। कामाख्या मन्दिर में पहुँचने से पहले ही उनका आश्रम मिल गया। पहाड़ के एक संकीर्ण कक्ष में बाबा जी आसन लगाकर बैठे हुए थे। आँखें बन्द थीं। गले में मोटी रुद्राक्ष की माला थी। व्याघ्र-चर्म से घर के भीतर का भाग आच्छादित था। घर के भीतर नर-मुण्डों के कपाल झूल रहे थे। उनके दाहिनी तरफ थाली में छाग-मांस आहुति के लिये रखा हुआ था। बायें बगल में एक टोकरी में छिली हुई, लीचियों का समूह मालूम पड़ा। पीछे मालूम हुआ कि यह आगन्तुक भक्तों के लिये प्रसाद रूप में देने को बकरों की आँखें रखी गई हैं। बाबा के सम्मुख होमकुण्ड प्रज्वलित किया गया। भक्त लोग आश्रम कक्ष को भीतर-बाहर पूर्ण कर रहे थे। मांस का आहुतिदान शुरू हो गया। भृंगारपात्र से डाली हुई शराब को मिट्टी के शराबों में भर-भर के भक्तों में परोसना भी शुरू हुआ। मैं संकुचित हो गया। एक भक्त ने कहा—"आज तुम्हारा परम सौभाग्य है। जो आज शनिवार की पूर्णाहुति के रोज तुम अचानक पहुँच गये हो।"

मेरे साथियों ने कहा—"आज दिबारात्र यहाँ ही रहा जाये। पूर्ण पंच-मकार के अर्थात् मत्स्य, मांस, मुद्रा, मद्य और मैथुन का पूर्ण सौभाग्य लेकर तब यहाँ से चलना।"

इस बात को सुनकर मुझे भय, क्रोध और लज्जा आई। मैंने मिट्टी के पात्रों को छीन लिया, फेंक दिया और तोड़ दिया। परोसने वाले चिल्लाने लगे। मैं अति वेग से नीचे उतरने लगा। भक्त लोग मुझे पकड़ने के लिये "पगला-पगला" कहते हुए पीछे दौड़ने लगे। मैंने देखा कि आठ-दस आदमी आ ही रहे हैं। मैं अचानक नीचे पड़े हुए पेड़ की मोटी डाल लेकर खड़ा हो गया। तब वे लोग डरके मारे भाग गये थे। मैं ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे पांडुघाट में पहुँच गया।

कामरूप से परशुराम

पांडुघाट में शिवसागर के एक पण्डित ने मेरी सब बातें सुनकर दुःख प्रकट किया। उन्होंने मुझे योगी-साधकों के पते दे दिये। मालूम हुआ

कि शिव सागर के 'मुक्तिनाथ' मन्दिर में जोड़हाट के जटिया बाबा के आश्रम में और आसाम की पूर्वोत्तर सीमा पर परशुराम कुण्ड के पास झुण्ड के झुण्ड योग-विद्या शिक्षा देने वाले योगी-साधक लोग रहते हैं। मैं उन स्थानों पर भी गया।

परशुराम कुण्ड से नेपाल

पश्चिम आसाम से पूर्व-आसाम तक अतिक्रम करके मैंने अकेले ही उन सब स्थानों में योगी और साधकों के सन्धान में परिभ्रमण किया था। लेकिन सफलकाम नहीं हुआ। ये लोग सबके सब कामाख्या वाली योग-साधना में ही निपुण हैं। मैंने निराश होकर सदिया में आकर दो रोज भर विश्राम किया। वहां एक नेपाली ब्राह्मण सिपाही से परिचय हो गया। उन्होंने मुझको नेपाल जाने के लिये परामर्श दिया। नेपाल में योग-सिद्ध पुरुष बहुत मिल लायेंगे—इस आशा पर मैंने उत्तरी-आसाम का अतिक्रमण करके मिथिला में प्रवेश किया। मैं समस्तीपुर, द्वारबंगा, बेतिया आदि का अतिक्रमण करके नेपाल में पहुँच गया था। धीरे-धीरे काठमुण्डु होकर पशुपतिनाथ पहुँचा। दो स्थानों में मेरी तलाशी भी ली गई। काठ-मुण्डु से करीब बीस योजन दूरी पर मुक्तिनाथ और वहाँ से दो योजन की दूरी पर विभिन्न स्थानों में गया। उन सब स्थानों में करीब-करीब सबही साधु-सन्न्यासी गांजा, भाँग और शराब पीते हैं। इनके मतानुसार ये सब नशीले पदार्थ योग-विद्या-शिक्षा के लिये जरूरी हैं। मैं नेपाल में आकर भी निराश हो गया। मैं एक वैरागी साधु के परामर्शानुसार कलकत्ता और नवद्वीप के प्रसिद्ध पण्डित और साधुओं से मिलने के लिये फिर कलकत्ता आने के लिये तैयार हो गया था और परिव्राजक साधुओं के साथ नेपाल से बंगाल के लिये प्रस्थान कर दिया था।

नेपाल से कलकत्ते में फिर

मैंने कलकत्ता आते हुए मिथिला की हालत भी जान ली थी। मिथिला के रहने वाले अधिकांश बहुत ही गरीब दुःखी और सरल हैं। इन में भक्त साधक बहुत हैं और योगी बहुत ही कम हैं। मैंने कलकत्ता आकर यहाँ के आदिम मालिक सावर्ण चौधरी के वंशधरों के आग्रह से उनके गृह में आश्रय लिया। यह स्थान बेहाला की तरफ कलकत्ते के दक्षिण में है। उन्होंने बाहर कहीं भी जाने का निषेध कर दिया था। किसी पर्व के उप-लक्ष्य में उन्होंने नवद्वीप और कलकत्ता के चुने हुए साधक और पण्डित लोगों को मेरे साथ वार्तालाप के लिये आमन्त्रण भेजा था। निर्दिष्ट दिन

में लगभग पच्चीस साधु और पण्डित सम्मिलित हुए, मेरी भ्रमण की कहानियाँ और भ्रमण के उद्देश्य को सुनकर सबने हर्ष प्रकट किया। एक वृद्ध पण्डित ने कहा—"आपने भारत के पूर्व पश्चिम-उत्तर दिशाओं के प्रधान-प्रधान सब ही तीर्थ-स्थानों में भ्रमण किया है। देशवासियों को और देश को आपने अच्छी तरह जान भी लिया है। अब बाकी रहा दक्षिण देश। दक्षिण देश का भ्रमण करके आप किसी स्थान पर साधना के लिये बैठ जायें या जो कुछ कर्त्तव्य समझें उसका पालन करें। हमने यहाँ सुना था कि दक्षिण देश के तीर्थ यात्री लंका तक भी तीर्थ-दर्शन के लिये जा सकते हैं। कलकत्ता में रहते हुए और चारों तरफ देखकर मेरे अनुभव में आया था कि अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य शिक्षा के लिये बंगाल में साधारण रूप से और कलकत्ता में विशेष रूप से विद्यालयों की स्थापना हो रही है। बहुतों को शायद मालूम नहीं है कि अप्रत्यक्ष रूप से ये सब विद्यालय गिरजाघर का रूप धारण करेंगे और प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा केन्द्र के रूप में ही रहेंगे। इससे दास-मनोभाव की वृद्धि होगी।

—:०:—

सप्तम अध्याय

दक्षिण भारत की यात्रा

कलकत्ता से पुरी

कलकत्ता से तीर्थ-यात्रियों के साथ मैं पुरी की तरफ रवाना होगया था। कलकत्ता से पुरी करीब चालीस योजन दूरी पर है। धीरे-धीरे हम पुरी में पहुँच गये। पहले पुरी से जगन्नाथ मन्दिर का पूजा संभार महाराष्ट्र-भोंसले वंशीय नागपुर के राजाओं के हाथों में था। अंग्रेजों से सन्धि होने के बाद यह पूजा-संभार भोंसले से छूटकर अंग्रेजों पर आ गया था। अंग्रेजों ने परिस्थिति के अनुसार इस जगन्नाथ-मूर्ति की पूजा का भार खुरदा के राजा पर छोड़ दिया। जगन्नाथ की सेवा और पूजादि कार्यों में बत्तीस हजार रुपये वार्षिक खर्च होता है। वह खर्च चलाने की मन्दिर की भू-सम्पत्ति को महन्त लोग जमींदारी के रूप में भोग कर रहे हैं।

पुरी में भारत के धर्म-सम्प्रदायों के सब ही के अपने-अपने मठ-मन्दिर-सन्न्यासी मौजूद हैं। आचार्य शंकर द्वारा स्थापित गोवर्धन मठ आज भी पुरी में विद्यमान है। किसी समय बौद्ध लोगों ने पुरी में प्राधान्य से विस्तार किया था। जगन्नाथ के मन्दिर में बौद्ध की शरण वाणी मूर्ति के रूप में स्थापित हुई थी। वे तीन शरण वाणियाँ ये हैं—"बुद्धं शरणं गच्छामि" "धम्मं शरणं गच्छामि" और 'संघं शरणं गच्छामि।"बुद्ध, धर्म और संघ ये तीन शरीर जगन्नाथ के मन्दिर में काष्ठ-निर्मित तीन देवता के रूप में देखे जाते हैं। "बुद्ध" जगन्नाथ के रूप में प्रथम "धर्म" सुभद्रा के रूप में द्वितीय और "संघ" बलराम के रूप में तृतीय शोभा और गौरव दे रहे हैं।

बौद्ध-तांत्रिकों के प्राधान्य से जगन्नाथ के मन्दिर गात्र में मिथुन शिल्प का भी प्राधान्य घोषित हो रहा है। विभिन्न हाव-भावों की अति

कुत्सित और अश्लील मूर्तियाँ आज भी मन्दिर-गात्र में स्थायी रूप से रखी हुई हैं।

पुरी में सर्वत्र खाद्याखाद्य व्यापार में कट्टरपन नहीं है। बाजार में रन्धित अन्न को सब कोई स्पर्श करते हैं और खरीद लेते हैं। किसी के रन्धित अन्न को जो चाहे खा सकते हैं। उदारता ने सीमा का भी अतिक्रम किया है। किसी के जूठे अन्न को जो चाहे खा सकते हैं और यह कार्य पुण्य समझा जाता है।

लेकिन आज भी बहुत हिन्दुओं के लिये मन्दिर में प्रवेशाधिकार नहीं हैं। उनके लिये मन्दिर के प्रवेश द्वार में 'पतित-पावन ठाकुर' नाम से एक चित्र रखा गया है। इस मूर्ति के दर्शन करके खास मन्दिर में प्रवेश के सम्पूर्ण पुण्य को ये लोग लूट लेते हैं। जगन्नाथ की रथ-यात्रा और स्नान-यात्रा के रहस्य तो बहुत ही विस्मयकर और हास्यकर हैं। रथ-यात्रा आदि उत्सवों में सब ही जातियाँ जगन्नाथ को स्पर्श करती हैं और पूजा देती हैं। इससे सर्वसाधारण के पाप जगन्नाथ में घुसकर जगन्नाथ को अशुचि बना देते हैं और जगन्नाथ खुद पतित और जाति-भ्रष्ट बन जाते हैं। इसलिये जगन्नाथ की स्नान-यात्रा से वे शुचि बन जाते हैं। सर्व-साधारण के पाप धौत होके जगन्नाथ के शरीर से निकल जाते हैं जगन्नाथ का पातित्य नष्ट हो जाता है। मूर्ति-पूजा के विविध विषयों में अर्थनीति का प्रभाव सर्वत्र ही दृष्ट होता है। व्यवसाय-नीति पर ही इसी ढंग से पंडा लोगों ने तीर्थ स्थानों में मूर्तिपूजा को कायम रखा है। पुरी में पंडा लोगों का राज्य है। स्नान-यात्रा और रथ-यात्रा के बाद पंडों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अत्याचार के कारण कोई योगी या साधक पुरी में ठहर नहीं सकते। मैं पुरी से नासिक की तरफरवाना हो गया।

यहां से रवाना होने से पहले मैंने जगन्नाथ मन्दिर के मालिक या खुरदा के राजा से प्रार्थना की थी—"राजन्! आप हमारे धर्म-रक्षक क्षत्रिय राजा हैं। आप हमारे धर्म को बचाइये। विदेशी वणिक् और विधर्मी ईसाई पादरी एक साथ मिलकर हमारे देश का सर्वनाश कर रहे हैं। ये लोग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से सत्यानाश कर रहे हैं। हम सन्न्यासी और साधु लोग देश में सर्वत्र देशवासियों को सचेत करने के लिये एकता-बद्ध हो रहे हैं। आप अपनी प्रजाओं को सचेत करने का भार लीजिए। आप केवल नियन्त्रण-भार लीजिए। सैकड़ों सन्न्यासी आपके नियन्त्रण में कार्य करेंगे। ये लोग केवल आपकी प्रजाओं के अन्दर

स्वधर्म की रक्षा और देश के प्रति भक्ति-भाव का प्रचार करेंगे। अगर इस कार्य के लिये आप असमर्थ हों तो जगन्नाथ मन्दिर की वार्षिक आय से कुछ अंश खर्च के लिये अपने किसी विश्वस्त व्यक्ति के हाथों में जमा कर दीजिये।"

राजा ने धीर स्थिर होके सब सुनी, लेकिन बोल दिया—"महाराज! इस विषय पर हमसे कभी अनुरोध दुबारा नहीं करना। इस प्रकार के दोनों कार्य ही विधि-विरोधी हैं। हम इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। एक पैसा भी इसमें से हम खर्च नहीं करेंगे। आप मुझको क्षमा करें।" मैं निराश होके चला आया।

पुरी से धनुष्कोटि:—मैं और साधु कृपाराम ब्रह्मचारी दोनों क्रमानुसार एक-एक करके नासिक, शृंगेरी, बंगलोर, महीशूर, कांची, त्रिचिनापल्ली, मदुरा, रामेश्वर, धनुष्कोटि और कन्याकुमारी तक और इन सब तीर्थों के अगल-बगल तीर्थों में भी गए। सब ही जगह विराट्-विराट् मन्दिरों में वार्षिक लाखों-लाखों रुपये जनसाधारण के भक्तिपूर्ण दानों से जमा हो जाते हैं। लेकिन इसका खर्च देश के अधिवासियों के हित या देश के हितकर कार्यों में नहीं होता है। केवल स्वार्थी पुजारियों के पालन-पोषण और भोग-विलास आडम्बरों में ही लग जाता है। सब मन्दिरों के कर्तृ-पक्ष से ही मैंने अनुरूप आवेदन किया था और मुझको अनुरूप जवाब भी मिल गया था कि उनसे यह सब कार्य असम्भव है।

धनुष्कोटि से लंका:—धनुष्कोटि में सारनाथ से आये हुए एक बौद्ध भिक्षु से वार्तालाप हुआ। उन्होंने मुझे सिहंल जाने के लिये प्रेरणा दी थी। मुझे और कृपाराम ब्रह्मचारी को भिक्षु के साथ काष्ठ निर्मित जलयान से उस पार जाने का सरकारी अनुमति-पत्र भी मिल गया। जहाज उस पार तलैमन्नार नामक बन्दरगाह में पहुंच गया। वहाँ से कोलम्बो और कांडी में जाकर बुद्ध मन्दिरों में ठहरा। वहाँ से एक पर्वत के 'आदम' नामक शृंग पर एक पुरातन मन्दिर में रहा। वहां अनुराधापुरादि स्थान भ्रमण करके बौद्ध-शिक्षालय, विहार और बौद्ध-मन्दिरों में बौद्ध लामा और भिक्षुओं के समक्ष भारत के विभिन्न धर्म मत और बौद्ध मत के बारे में आलोचना की। सिंहल को प्राचीन लंका बोलकर स्वीकार करना कठिन है।

लंका से धनुष्कोटि—लंका (सिंहल) से हम लोग जलयान द्वारा फिर धनुष्कोटि पहुँच गए थे। मैं धनुष्कोटि में बौद्ध-सम्मेलन में निमन्त्रित होके पहुँचा। हमारे साथ कई एक बौद्ध-भिक्षु लंका से आते समय परि-

चित हो गये थे। हम बुद्ध को एक योगी साधु बोलकर ही विश्वास करते हैं। वे नास्तिक भी नहीं थे और वेद-विरोधी भी नहीं थे। वेद के नाम पर जो यज्ञों में पशु-बध होते थे और वैदिक-धर्म के नाम पर जो अयौक्तिक कदाचार और कुप्रथा का प्रचलन था, बुद्ध उन्हीं के विरोधी थे। बौद्ध पंडितों ने मेरे मुख से "धम्मपद" ग्रन्थ से गौतम बुद्ध की वाणियाँ भी सुनी थी। वे लोग मेरे प्रति सन्तुष्ट हुए थे। बौद्धों के अन्दर हीनयान और महायान सम्प्रदायों के भेद-भाव, बौद्ध सम्प्रदाय के लिये हानिकारक हुए हैं। एक बौद्ध पंडित ने सम्मेलन में मुझसे प्रश्न किया था—भारत में बौद्ध धर्म की धीरे-धीरे विलुप्ति का क्या कारण है ?"

हमने जबाव में कहा :—"वेद-विरोधी मनोभाव और प्रचार, ईश्वर-विरोधी आन्दोलन, राजा-महाराजा-सम्राटों पर बौद्ध धम-प्रचार करने का भार अर्पण कर देना, भिक्षु और भिक्षुणी को एक साथ प्रचारक पदों पर नियुक्त कर देना, भिक्षु लोगों का गृहस्थ लोगों के साथ अत्यन्त घनिष्ठता स्थापन करना इत्यादि कारणों से भारत में बौद्ध-धर्म का प्रचार और प्रसार अबाध गति से नहीं हुआ।

धनुषकोटि से कन्याकुमारी

बहुत दिनों से निर्दिष्ट स्थानों में और निर्दिष्ट समय तक दिल्ली के योगमाया मन्दिर से प्रजा विद्रोह के बारे में कोई खबर नहीं मिली थी। मैं धनुष्कोटि से कन्याकुमारी में आया था। वहाँ रामेश्वर के भव्य मन्दिर में ठहरा। विभिन्न मन्दिरों से घूम-घूम कर साधु-संगठन कार्य में दीर्घ-काल व्यतीत किया गया। साधु आपस में संगठित होने लगे। स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा करना और वहाँ के जन साधारण के अन्दर जागृति पैदा कर देना ही साधुओं का कर्तव्य था। भारत-व्यापी प्रजा विद्रोह का प्रत्यक्ष संग्राम अचानक शुरू हो गया था। अत्याचारित और उत्तेजित प्रजागण नेतृवृन्द के नियन्त्रण से बाहर चला गया था। बहरामपुर, बारीक-पुर, मेरठ आदि स्थानों से विद्रोह शुरू होकर भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में फैल गया था। दिल्ली, लखनऊ कानपुर, बरेली और झाँसी इस क्रांति युद्ध के केन्द्र रहे थे। संगठन पूरा नहीं होने कारण और अचानक विच्छिन्न और विशृंखल रूप से युद्ध शुरूहोने के कारण युद्ध में पराजय आ गया था। विद्रोही प्रजाजन संख्या में करीब ५०-६०हजार नेपाल की सीमा पर नेपाल राज्य के आश्रय-प्रार्थियों के रूप में हाजिर हो गये थे नेपाल-राज श्री जंग-बहादुर ने कड़ी भाषा में आश्रय देने से इन्कार कर दिया था। नाना साहब, तात्या टोपे आदि कई एक नेता विद्रोहियों के साथ थे। विद्रोही

प्रजाजनों ने आत्म-रक्षार्थ जंगलों में प्रवेश किया था और वहाँ ही फल-फूल खाकर किसी रूप से देह-रक्षा करने लगे थे। बहुत प्रजा भूखी मर गई या वन्य हिंस्र पशुओं के आहार के रूप में समाप्त हो गई थी। बहुत विद्रोही पकड़े जाने पर मृत्यु दण्ड को प्राप्त हुए और कोई-कोई भाग कर आत्म-रक्षार्थ इधर-उधर चले गये थे। इस प्रकार की चर्चा कन्या-कुमारी तक चल रही थी। हम इस पर अच्छी तरह सोचने लगे और दिल्ली के योग-माया मन्दिर से कन्या कुमारी में प्रजा-विद्रोह के बारे में आने वाले समाचार की प्रतीक्षा में निर्दिष्ट दिन तक बिताने का संकल्प किया था।

नाना साहब कन्या कुमारी में

कन्या कुमारी भारत का अन्तिम दक्षिणी सीमा का अन्तरीप है। पूर्व दिशा का बंगोपसागर, पश्चिमी दिशा का अरब सागर और दक्षिणी दिशा का भारत महा सागर इस कन्याकुमारी अन्तरीप के सम्मुख सम्मिलित हुए हैं। एक दिन भारत महासागर की तरफ मुख करके एकान्त में बैठे हुए हम भारत के धर्म और स्वतन्त्रता की विराट् समस्या के बारे में आँखें बन्द करके सोच विचार कर रहे थे। अचानक पीछे से शब्द आया—"हम योग-माया मन्दिर के समाचार लाये हैं।" मुख पीछे की तरफ घुमा कर देखा तीन मुण्डित मस्तक, गैरिक वस्त्रों से सज्जित और कमण्डलधारी सन्न्यासी आ रहे हैं। उनमें से एक को शिवाजी के सतारा सिंहासन के उत्तराधिकारी नाना साहब को पहचान लिया। शेष दोनों अपरिचित थे। तीनों प्रणिपात करके बैठ गये और तीनों ही सजल दृष्टि से अवाक् से रहे थे।

मैंने कहा—"युद्ध-पराजय और नेपाल के जंगल में प्रवेश तक मुझे सब मालूम हो गया। इसमें हताशा या निराशा होने का कोई कारण नहीं है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिये युद्ध में जय या पराजय दोनों ही लाभदायक हैं। आप लोग भविष्यत् भारत के लिये त्याग, साहस, शूरता और निर्भीकता और स्वतन्त्रता के लिये प्रेरणा देंगे।"

नाना साहब ने दोनों आगन्तुकों का परिचय दिया—"एक तात्या टोपे और दूसरे मेरे साथी दुर्जय राव हैं। हम लोग इसी गुप्त वेश में आप को योग-माया मन्दिर के निर्देशानुसार ढूँढ़ते हुए यहाँ पहुँच गये हैं ब्रिटिश गुप्तचर हमारे सन्धान के लिये हमें ढूँढ़ रहे हैं। न मालूम कब हम पकड़े जायेंगे और बध-स्तम्भों में प्राण-त्याग करेंगे। आप आशीर्वाद दीजिये। जिससे हम सहर्ष मृत्यु-वरण कर सकें और भारत के सुपुत्र पराधीन भारत को मुक्त कराने के लिये आयें।"

कानपुर की चर्चा

कानपुर के १ सहस्र अंग्रेज नर-नारियाँ विपत्ति में पड़ी हुई थी। मैंने आश्वासन दिया था कि ये लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार इलाहाबाद में जा सकते हैं। इन अंग्रेजों के अन्दर सैंकड़ों सिपाही ऐसे भी थे जिन्होंने विगत सप्ताह में काशी और प्रयाग में उन सब देशी सिपाहियों के बालकों और स्त्रियों पर अत्याचार किया था। नील साहब के अत्याचारों की स्मृति ने भी इन सब देशी सिपाहियों को उत्तेजित कर दिया था। जिस के कारण उन्होंने गोलियों के द्वारा उनमें अधिकांश को मार दिया था। जो लोग बच गये थे उनको भी बन्दी बनवा दिया। विद्रोही-प्रजा और सैन्यों पर विजय-लाभ करके जब विजयी अंग्रेज-सिपाही कानपुर के समीप पहुँच गये तब विद्रोही प्रजाओं ने दो सौ से भी अधिक बन्दी अंग्रेज महिला और शिशुओं का बध करके उनके मृत देहों को निकटस्थ कुओं में फेंक दिया था। जनता के इस प्रकार के हत्या-काँड के साथ मेरा बिल्कुल सम्बन्ध नहीं था। तथापि आनुषंगिक कारणों से मेरा सम्बन्ध था। इस महापाप के प्रायश्चित्त के लिए मैं अपने देह को प्रज्वलित अग्निकुण्ड में आहुति के रूप में डाल दूंगा। मैंने ऐसा ही संकल्प कर लिया।"

मेरी सम्मति पर नाना साहब की स्वीकृति—मैंने कहा—"आपका इस प्रकार का संकल्प भूल है। आत्महत्या तो मानसिक विकार या कमजोरी से होती है। आत्मत्याग दूसरा कुछ है। मानसिक बल और तेजस्विता के बिना आत्मत्याग नहीं बनता। आप तेजस्वी पुरुष हैं। लेकिन सन्न्यासियों के वेश को गुप्त रूप से ग्रहण किया है। आप इस गैरिक वस्त्र को सत्य रूप से ग्रहण कीजिये। भारत के पश्चिम सीमा की तरफ किसी मठ मन्दिर में रहकर आप जन-सेवा के लिए जीवन-दान कीजिये। मनुष्यों को पारमार्थिक कल्याण के लिए उपदेश दीजिये। ऐहिक कल्याण के लिये रोगियों को बिना मूल्य वृक्षों के मूल और पत्ती से औषध बनवा के वितरण करते रहिये, मृत्यु तक शान्ति और आनन्द के साथ शेष जीवन बिता सकेंगे। आप आत्म-हत्या कभी न करें। हमारे इस उपदेश को तीनों ने ही समान रूप से ग्रहण किया और तीनों के वहाँ से चलने से पहले मैंने नाना साहब को सन्न्यास देकर उनका नाम दिव्यानन्द स्वामी रख दिया था। शेष दोनों ने सन्न्यास लेने का साहस नहीं किया। दिव्यानन्द ने "ऐसा ही होगा। भगवान् की इच्छापूर्ण हो" ऐसा कहा और तीनों ही वहाँ से चल दिये।

मेरा भावी कार्यक्रम—अपने संक्षिप्त जीवन के अन्दर सामाजिक स्थिति और गण-जागरण को मैंने सूक्ष्म रूप से अनुभव किया था। इसलिये ही विशुद्ध ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता समझ ली थी और साथ-साथ मुझे यह भी मालूम हो गया था कि बिना वैदिक ज्ञान के विशुद्ध ज्ञान आ भी नहीं सकता। समाज संस्कार और जातीय जागरण वैदिक भित्ति पर हो—इस सिद्धान्त को देश-हित और मानव-हित के लिए मैंने ग्रहण किया। देश में शत-सहस्त्रों की संख्या में प्रचार-धर्मी वेद-प्रचारक बन जायें तो देश का कल्याण होगा। वैदिक ज्ञान से वंचित **समाज-संस्कारक या राजनीतिक कर्णधार हमको भोगवाद, उच्छृंखलता और नास्तिकता की तरफ लें जायेंगे**। इसलिये वेद को सर्व-साधारण के अन्दर सहज, सरल और सुबोध रूप से जाति-वर्ण-लिंग निर्विशेष से प्रचार करने की आवश्यकता है। तब हम सोचने लगे कि **वेद के अनुभवी, वेद के ज्ञान को देने में समर्थ और इच्छुक विद्वान् कहां है और उनका दर्शन किस प्रकार से हो**। मैंने योग-विद्या-परायण योगियों के संधान के लिए जैसे विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया था और लाभवान् हुआ था ऐसे ही वैदिक ज्ञान प्रदान करने के इच्छुक और प्रकृत वेदज्ञ पंडितों के संधान में भ्रमण करने पर भी मेरा उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ था। योग-विद्या के ज्ञानार्जन के लिये जैसे मैंने भिन्न-भिन्न स्थानों में परिभ्रमण किया था ठीक वैसे ही वेद पाणिनि, निरुक्त, ब्राह्मण, सूत्रादि वैदिक ग्रन्थों के ज्ञानार्जन के लिये मैंने देश के विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया था। अन्त में वेद विद्या-अर्जन के लिये भारत के अद्वितीय वेदज्ञ पंडित दण्डी स्वामी श्रीमद् विरजानन्द सरस्वती के शरण ग्रहणार्थ मथुरा में मैं आ गया था। उन्होंने मेरे प्रति अशेष कृपा करके वर्षों तक मुझे वेद-विद्या प्रदान की, उन्होंने मुझसे "सर्वसाधारण के अन्दर वेद-प्रचार और अवैदिक मतों के खण्डन" की शपथ को दक्षिणा रूप से ग्रहण किया था।

गुरु-दक्षिणा-दान—गुरु-दक्षिणा-प्रदानार्थ ही मैंने आगरे से लेकर काशी तक साठ से ऊपर स्थानों में करीब नौ वर्षों तक परिभ्रमण किया। शास्त्रार्थ किये और वैदिक ज्ञान का प्रचार किया है। इसी क्रम के अनुसार ही मैंने काशी में आकर रक्षण-शील सनातनी पंडितों को "मूर्ति-पूजा अवैदिक" विषय लेकर शास्त्र-युद्ध में आह्वान किया था। उस शास्त्र-विचार-सभा में सत्ताईस विरोधी पंडितों के सम्मुखीन हुआ था। उन सत्ताईस पंडितों के अन्दर प्रधान प्रतिद्वन्दी छः पंडित बंगाली ही थे। उस

सभा के विवरण-संग्रहार्थ 'बंगाल रायल सोसाईटी" के वैदिक पंडित श्री सत्यव्रत सामश्रमी उपस्थित थे। उन्होंने अपने संस्कृत पत्र 'प्रयत्न-क्रम-नन्दिनी' में मेरे लिए मेरे पक्ष में विजय घोषणा की थी। 'हिन्दू पेट्रियट' और सुज्ञ समाज के "तत्त्व बोधिनी" पत्रों में भी मेरे ही अनुरूप विजय-घोषणा की गई थी। इस उपलक्ष में बंगाल के प्रतिष्ठित पुरुषों से मेरा घनिष्ठ परिचय हो गया। देवेन्द्रनाथ ठाकुरादि के अनुरोध से ही मैं कलकत्ता आया हुआ हूं।

उपसंहार

कलकत्ता आने का मुख्य उद्देश्य—मेरे कलकत्ता आने का प्रधान उद्देश्य है—वेद विद्यालय की स्थापना और गौण उद्देश्य है वैदिक धर्म का मौखिक प्रचार करना। संस्कार-पन्थी बंगाल की तरफ मेरा मानसिक आकर्षण स्वाभाविक ही था। राजा राममोहन राय का मूर्ति-पूजा विरोधी आन्दोलन (सन् १७८७), ईसाई धर्म-विरोध आन्दोलन (सन् १८२०) सतीदाह निषेध आन्दोलन (सन् १८२९); जन साधारण के अन्दर आर्य-धर्म-प्रचार के लिए महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के "तत्त्व बोधिनी पत्र" का संस्थापन और स्त्री शिक्षा के लिये विद्यालय-स्थापनादि का कार्य और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के द्वारा ऋग्वेद का बंगानुवाद प्रकाशन (सन् १८४१) आदि सर्वतोमुखी संस्कारादि के कारण बंगाल के प्रति मेरा आर्कषण पैदा हो गया था।

१६ दिसम्बर, १८७२ को मैं कलकत्ता पहुँचा था, आज ३१ मार्च १८७३ है। अब हुगली और वर्धमान की तरफ भी मुझे जाना है। इसके पश्चात् बिहार की तरफ रवाना हो जाऊंगा। कल से मैं मौन धारण करूंगा। परमप्रभु आप लोगों की सदिच्छा पूर्ण करें।

मेरे मुख से आप लोगों ने मेरे जीवन के बारे में सब कुछ सुनने के लिए आग्रह किया था। योग-विद्या के बारे में मेरा अनुभव, प्रजा-विद्रोह के बारे में मेरा मन्तव्य और मेरे पारिवारिक परिचय के बारे में प्रकाश आदि विषय जानने के लिये विशिष्ट व्यक्तियों ने इच्छा प्रकट की थी। मैंने जहां तक सम्भव हुआ इन विषयों के बारे में सब कुछ कहा।

विभिन्न शंकायें मेरे सम्मुख आयी थीं। इनका भी समाधान किया गया है। जहाँ तक यह सब मेरी स्मृति में थे, सब कुछ कहा। आप लोगों ने सब का सब लिपि बद्ध किया है। आप लोगों से केवल एक ही अनुरोध है कि **मेरे जीवन-काल में यह सब मुद्रित न हो।**

हेमचन्द्र से स्वामी जी का कथन

[स्वामीजी के कलकत्ता-वास के पश्चात् श्री हेमचन्द चक्रवर्ती योगाभ्यास के लिए १ वर्ष तक स्वामी जी के साथ ही रहे। उनकी विदाई के समय स्वामी जी ने उन्हें जो बताया था, उस में से कुछ अंश हेमचन्द्र जी के लेख का उनके गृह से श्री बन्धु जी को बाद में प्राप्त हुआ दीन जो यहाँ गया है।—सम्पादक]

बंगालियों से मेरा परिचय काशी के शास्त्रार्थ में (सन् १८६९) में भारत के विभिन्न प्रान्तों के साधु, सन्यासी, त्यागी, अध्यापक आदि भारत प्रसिद्ध सत्ताईस पंडितों के सम्मुख खड़ा हो गया था। "मूर्ति-पूजा वेद-विरोधी है," मेरा पक्ष था। मेरे विरोधी सत्ताईस पंडितों के अन्दर प्रमुख तार्किक पं० ताराचरण तर्करत्न, पं० कैलासचन्द्र आचार्य शिरोमणि, पं० नवीन नारायण तर्कालंकार, पं० काशीप्रसाद शिरोमणि, पं० राधामोहन तर्कवागीश और पं० जयनारायण तर्क वाचस्पति—ये छः पंडित बंगाली ही थे। पं० ताराचरण तर्करत्न (काशी-नरेश के प्रधान सभा पंडित) शास्त्रार्थ के अधिष्ठाता थे।

बंगाल की शिष्टता—बंगाल की शिष्टता हमारे लिए विस्मयकर थी, बहुत प्रान्तों से मुझे लाठी, पत्थर, गाली-गलौज, गदहे की शोभा-यात्रा कलंकारोपण और बार-बार जहर मिले थे। मालूम होता है कि यहाँ के मनुष्य यह सब जानते ही नहीं। काशी शास्त्रार्थ के विरोधी पक्ष के नेता कलकत्ते में हम से सुहृद् भाव से मिलते हैं। हुगली-शास्त्रार्थ के बाद विरोधी पं० ताराचरण तर्करत्न ने दोतल्ला-गृह में बात-चीत में और सम्यक् मधुर व्यवहार में जो सौजन्य का परिचय दिया है उसको कभी मैं नहीं भूलूंगा। हमारे विरोधी पंडित महामहोपाध्याय श्री महेशचन्द्र न्यायरत्न को ही मैंने उनके व्यवहार से मुग्ध होकर अपनी संस्कृत भाषा की वक्तृता को बंगला में अनुवाद करने को दिया था। कलकत्ता के समाज-सुधारक, राष्ट्र-सुधारक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक, ज्ञानी-गुणी, साधु, ईसाई, मुसलमान, राजा-महाराजा सभी से मुझे सम्मान और श्रद्धा प्राप्त हुई है।

वेद विद्यालय की स्थापना के बारे में राजा राजेन्द्रलाल मल्लिक के गृह के सम्मेलन में आप लोगों ने सिद्धान्त निश्चय किया कि स्थानीय संस्कृत कालेज में ही वेद के अध्यापन के लिए प्रयत्न किया जायेगा। यदि

वह सम्भव नहीं हो तो स्वतन्त्र वेद-विद्यालय स्थापन किया जाएगा। ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र सेन, महामहोपाध्याय पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न, आप (पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती) और पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागरादि ने इसमें सहर्ष अपनी सहमति प्रदान की है।

❀ आत्मचरित्र समाप्त ❀

परिशिष्ट—१

अज्ञात जीवनी के भारतीय स्थानों के पते

भारत के एक-एक स्थान, एक-एक तीर्थ-गुफा-नदी-नाले के जहाँ-जहाँ अवधूत दयानन्द ने भ्रमण किया था उनमें से बहुत-से स्थानों को लापता बताकर प्रतिवाद कर दिया गया था उनमें से पाँच-छह स्थानों और तीर्थों के चित्र भी दिये हैं। अधिक देने से संख्या बढ़ जाती है।

नर्मदा के तट के तीर्थ

अमर कण्टक—विन्ध्य प्रदेश की सरकार का ग्रीष्म का आवास-स्थान माना गया है। अतः वहां तक रीवा से पक्की सड़क है। मोटर बसें चलती हैं। पूर्वी रेलवे की कटनी-बिलासपुर शाखा में बिलासपुर से ६३ मील पर 'पेंडरा रोड' स्टेशन है। पास ही 'गौरेला' ग्राम है। कई धर्मशालायें हैं। गौरेला से मोटर कबीर चौतरा जाती है। वहां से अमरकण्टक तीन मील है। अहिल्या बाई की धर्मशाला में ठहरिये।

११ कोण का एक पक्का कुण्ड है। चारों ओर सीढियां है। पश्चिम में गोमुख है उस से थोड़ा २ जल गिरता है। इस कुण्ड को **कोटि तीर्थ** कहते हैं। आधा मील दूरी पर आग्नेय कोण में मार्कण्डेय ऋषिका आश्रम है।

भृगु कमण्डलु—मार्कण्डेय से १ मील शोणभद्र नदो का उद्गम है। घोर जंगल का कठिन मार्ग। दक्षिण में भृगु कमण्डलु है। एक छोटी नदी निकलती है। भृगु ने तपस्या की।

कबीर चौतरा—अमर कण्टक से ३ मील वन के मध्य है। कबीर जी का निवास रहा। वन्य पशुओं का भय है।

कपिल आश्रम—अमर कण्टक से ७ मील पर है। यहां **कपिल धारा** नामक नर्मदा का प्रपात है। बहुत संकरा पैदल मार्ग हैं। पास में ही **नील गंगा** का संगम और चक्रतीर्थ हैं।

दुग्ध धारा— १ मील आगे दूसरा प्रपात दुग्धधारा है। मार्ग संकरा और डरावना है।

ज्वालेश्वर—अमर कण्टक से उत्तर में ४ मील पर ज्वाला नदी का उद्गम है। ज्वालेश्वर महादेव का मन्दिर है। सघन वन एवं पर्वत का मार्ग है। मार्गदर्शक लेकर हो जाना है।

ऋण मुक्तेश्वर मन्दिर— डिंडोरी से ९ मील सड़क पर है। मचरार नदी के किनारे स्वामी शंकराचार्य ने स्थापित किया था। नर्मदा यहाँ से ६ मील है।

कुकरी मठ— ऋण मुक्तेश्वर कुकरी मठ में ही है।

व्यास आश्रम—गोंदिया-जबलपुर पूर्व रेलवे लाइन पर 'नैनपुर' स्टेशन है। वहाँ से दूसरी लाइन मंडला फोर्ट जाती है। वहाँ से देव गाँव तक पक्की सड़क है। वहाँ **बढनेर** नदी नर्मदा में मिलती है।

मण्डला किले के सामने नर्मदा के दूसरे तटपर व्यास-आश्रम है। व्यासनारायण शंकर की मूर्ति है।

देव कुण्ड— डिंडोरी से मण्डला जाने वाली सड़क पर १४ मील पर सक्का ग्राम है। दो मील पर **खरमेर** नदी नर्मदा में मिलती है। पास देव नाले का कुण्ड है। इस देवकुण्ड में ४० फुट ऊपर से जल गिरता है। यहाँ कई गुफाएं हैं।

महो गांव— मण्डला से आने वाली पक्की सड़क पर ९ मील दूर **महोगांव** है। जमदग्नि की कामधेनु यहीं रहती थी। **बढनेर** नदी के किनारे यह गाँव है।

हृदय नगर— मण्डला के सामने नर्मदा के दूसरे तट पर बंजर नदी नर्मदा में मिलती है। संगम से ५ मील दूर हृदय नगर है। यहाँ **सुरपन** और **मटियारी** नामक नदियां बंजर नदी में मिलती हैं। यह त्रिवेणी कहलाती है। इसे पहले विष्णुपुरी कहते थे। अनेक मन्दिर और पक्के घाट हैं।

मधुपुरा घाट—या **घोड़ा घाट**:—संगम से ८ मील दूर नर्मदा के ऊपर की ओर स्थित है। यहाँ मार्कण्डेय ऋषि का आश्रम है। ऋषि मार्कण्डेय ने यहाँ तप किया था। मार्कण्डेयेश्वर का मन्दिर यहाँ है भगवान् राम के अश्वमेध का घोड़ा यहाँ आया था। इसलिए घोड़ाघाट नाम पड़ा।

योगिनी गुफा— मधु पुरा से ३ मील पूर्व की ओर है। योगिनी ने उसे गुप्त कर दिया। शत्रुघ्न के आग्रह पर लौटा दिया।

नन्दिकेश्वर घाट— जबलपुर जिले में नर्मदा के उत्तर तट पर है। लुकेश्वर से २० मील है। मण्डला-जबलपुर सड़क से नर्मदा तट के ग्राम पदमीघाट तक जा सकते है। वहाँ से ५ मील लुकेश्वर है। यहाँ थोड़ी दूर पर **हिंगना** नदी नर्मदा में मिलती है।

सिघर पुर—देवगाँव से थोड़ी दूर उत्तर तट पर 'लिंगाघाट' ग्राम है। वहाँ से थोड़ी दूर दक्षिण तट पर सिंघरपुर ग्राम है। शृंगी ऋषि का स्थान है।

जबल पुर—मध्य रेलवे का प्रसिद्ध स्टेशन है। यहां जाबालि ऋषि का आश्रम था। इस का पुराना नाम जाबालि पत्तन है। अब यहाँ आश्रम का कोई चिह्न नहीं है।

तिलवाराघाट—जबलपुर से ६ मील दूर नागपुर जाने वाली सड़क पर है। तिलभाण्डेश्वर का मन्दिर है।

राम नगर—तिलवारा घाट से एक मील दूर नर्मदा के उत्तर तट पर **मुकुट क्षेत्र** है।

त्रिशूल घाट—रामनगर से लगभग दो मील पर नर्मदा के दोनों तटों पर क्रमशः त्रिशूल घाट तथा **त्रिशूल तीर्थ** हैं।

लमेटी घाट—त्रिशूलघाट से एक मील आगे दोनों तटों पर यह घाट है। उत्तर तट पर **सरस्वती** नदी का संगम है। इन्द्र ने यहाँ तपस्या की इन्द्रेश्वर शिवमन्दिर है।

गोपालपुर घाट— लमेटी घाट से १ मील आगे नर्मदा के उत्तर तट पर है। तीन मील पर तेवर ग्राम है। त्रिपुरी कहलाता था। दो मील पर करनबेल के खण्डहर हैं।

भेडा घाट— गोपालपुर घाट से ३ मील पर है। जबलपुर से १० मील स्टेशन भी है। पक्की सड़क है। भृगु ऋषि की तपोभूमि है। भृगु आश्रम है। वामन गंगा का संगम है। छोटी पहाड़ी पर गौरी शंकर मन्दिर है। ४० फुट ऊपर संगमरमर की चट्टानों पर प्रपात गिरता है।

जलेरी घाट—भेडा घाट से १० मील दूर यह घाट है। नर्मदा के बीच में पर्वत को तली फोड़ कर शंकर जी की जलहरी बनी है। यह कुण्ड बन गया है।

बेलपठार घाट— जलेरी घाट से ४ मील दूर नर्मदा के उत्तर तट पर है।

ब्रह्माण्ड घाट— मध्य रेलवे में जबलपुर से इटारसी की ओर ६२ मील पर करेली स्टेशन है। करेली सेसागर जाने वाली सड़क पर,करेली से ६ मील दूर, नर्मदा तट पर ब्रह्माण्ड घाट है। थोड़ी दूर पर दो धारायें हो गई हैं। द्वीप में कुछ आगे **सप्तधारा तीर्थ** है। गिरते समय कई धारायें हो गई हैं। ब्रह्मा जी का यज्ञकुंड है। यज्ञ भस्म निकलती है। उत्तर तट पर ब्रह्माण्ड ग्राम में पक्के घाट हैं।

पिठेरा गरारु— प्रवाह के ऊपर की ओर ब्रह्माण्ड घाट से लगभग १४ मील पर दक्षिण तट पर गरारु ग्राम है। सामने तट पर पिठेरा ग्राम है। प्राचीन मन्दिर अनेक हैं।

पिपरिया घाट—गरारू से ४ मील दूर नर्मदा के दक्षिण तट पर है। शंकर की मूर्ति ५ फुट से भी ऊँची है।

हरणी संगम—पिपरिया घाट से ६ मील दूर नर्मदा के उत्तर तट पर **हरणीनदी का संगम है**। यहाँ संगमेश्वर और हरणेश्वर मन्दिर हैं। सामने सांकल ग्राम है। आद्य शंकर भी यहाँ आये थे।

बुधघाट—यहाँ से २ मील बुध ग्रह की तपोभूमि है। बुधेश्वर मन्दिर है।

ब्रह्मकुण्ड—यहाँ से २ मील दक्षिण तट पर ब्रह्मकुण्ड है। कुण्ड में देव शिला है।

सहस्रावर्त तीर्थ—यहाँ से ५ मील दूर उत्तर तट पर स्थित है। अब इसका नाम सुनाचार घाट है।

सौगंधिक तीर्थ—यह १ मील पर है। आजकल सरीघाट कहलाता है।

सप्तर्षि वन—सहस्रावर्त्त तीर्थ से एक मील पर है। यह प्राचीन ब्रह्मोदतीर्थ है।

अंडिया घाट—प्रवाह की ओर ब्रह्मकुण्ड से ५ मील दूर उत्तर तट पर है। मन्मथेश्वर शिव मन्दिर है।

शांकरी गंगा संगम—अंडिया घाट से ५ मील दूर उत्तर तट पर बेलथारी ग्राम है। यहां बलि की यज्ञ वेदी है। यज्ञ भस्म निकलती है।

दक्षिण तट पर **शांकरी गंगा** नदी का संगम है। यहाँ पर आद्य शंकराचार्य आये थे।

कश्यप आश्रम– बेलथारी ग्राम से १६ मील दूर उत्तर तट पर स्थित है। गाडर बाडा स्टेशन से रिछावर घाट तक सड़क है। रिछावर घाट से शुक्लघाट १ मील है। यहाँ ऋषियात्रा काल में कश्यप आश्रम था। अब समाप्त हो गया है।

शक्कर नदी का संगम—शुक्लघाट से आगे एक मील पर दक्षिण तट पर शोकलपुर ग्राम है। यहाँ ही शक्कर नदी का संगम है। संगमेश्वर मन्दिर है।

जनकेश्वर तीर्थ—शोकलपुर से ४ मील दूर उत्तर तट पर अंघोरा ग्राम है। यहाँ ही जनकेश्वर तीर्थ है। कहा जाता है यहाँ राजा जनक ने यज्ञ किया था।

धर्मशिला—अंघोरा ग्राम से १६ मील पर है। ग्राम के पास जमुना घाट में नर्मदा के कुण्ड में ४० फुट से अधिक लम्बी धर्मशिला है।

दुग्धी नदी संगम—डेमावर से २ मील आगे दक्षिण तट पर दूधी नदी का संगम है। इसे वगल दरियाव भी कहते हैं।

साईं खेडा—गाडर वाड़ा स्टेशन से साईं खेड़ा कुछ मील दूर है। दूधी नदी के किनारे वसा है। गाडरवाडा से पक्की सड़क भी आती है।

केउधान घाट—दूधी संगम से लगभग १ मील उत्तर तट पर खाँड नदी का संगम है। उससे आधा मील आगे केउधान घाट है। शुद्ध नाम केतुधान घाट है।

हास्यांग बाद – होशंगाबाद का हास्यांगबाद संस्कृतीकरण है। मध्य रेलवे की बम्बई-दिल्ली लाइन पर इटारसी से १२ मील दूर हास्यांगबाद है। प्रसिद्ध नगर है। स्टेशन से आधामील दक्षिण तट पर है किनारे अनेकों मन्दिर हैं। सुन्दर घाट हैं।

तवानदी का संगम–होशंगाबाद से ६ मील पर बान्द्राभान है। उत्तर तट पर पर्वत श्रेणी में मृगनाथ का स्थान है। दक्षिण तट पर तवा नदी का संगम है।

सूर्य कुण्ड–बान्द्राभान से ६ मील दूर नर्मदा के दक्षिण तट पर सूर्य कुण्ड है।

गौघाट—सूर्य कुण्ड से सीधे मार्ग से लगभग दस मील दूर वृद्ध रेवा पर गौ घाट है। कुछ ऊपर नर्मदा की दो धारायें हो गई हैं। छोटी धारा को वृद्ध रेवा कहते हैं। गौघाट पर १२ योगिनियों तथा दो सिद्धों के स्थान हैं।

नाँदनेर—नर्मदा की मुख्य धारा के उत्तर तट पर प्राचीन मन्दिरों के खण्डहर है। **महाकालेश्वर** तथा **मनः कामेश्वर** के शिव मन्दिर हैं।

भृगु कछ आश्रम—नाँदनेर से ८ मील दूर उत्तर तट पर है। कहा जाता है महर्षि भृगु ने यहाँ गायत्री पुरश्चरण किया था। इसे भार कछ भी कहते हैं।

मारू नदी का संगम—भृगुकछ से दो मील दूर पर मारू नदी का संगम है। पांडवों की तपोभूमि है। इसलिए पांडुद्वीप कहाता है। यहाँ पामली नामक घाट है।

पलकमती नदी का संगम—पाण्डुद्वीप से १ मील पर नर्मदा के दक्षिण तट पर पलकमती नदी का संगम है। वनवास के समय पांडवों ने यहाँ यज्ञ किया था।

नारदी गंगा का संगम—पामली घाट से दो मील पर ईश्वर पुर है। मध्य रेलवे की इटारसी-इलाहाबाद लाइन पर इटारसी से ३० मील दूर सोहागपुर स्टेशन है। सोहागपुर से ईश्वरपुर तक सड़क है। ईश्वरपुर से मोतल सिर ४ मील दूर दक्षिण तट पर है। यहाँ नर्मदा में नारदी गंगा मिलती है। नारद जी की तपोभूमि तथा यज्ञभूमि है।

वरुणा नदी का संगम—मोतलसिर से ३ मील दूर नर्मदा के उत्तर तट पर वरुणा नदी का संगम है। सिंगलवाडा ग्राम तीर्थ है। वारुणेश्वर मन्दिर जीर्ण हो गया है।

आकाशदीप तीर्थ—सिंगलवाडा से २ मील पर तेदोनी नदी उत्तर तट पर नर्मदा में मिलती है। इसे ही आकाशदीप तीर्थ कहा जाता है। पाण्डवों ने यहाँ यज्ञ किया था और कार्तिक में आकाशदीप लटकाये थे।

कुब्जा संगम—तेदोनी संगम से ५ मील दूर दक्षिण तट पर माछा ग्राम है। यहाँ कुब्जा नदी का संगम है। इसे रामघाट तथा बिल्वाभ्रक तीर्थ भी कहते हैं। राजा रन्तिदेव ने यहाँ बहुत बड़ा यज्ञ किया था। कुब्जा की यह तपोभूमि कही जाती है। मन्दिर हैं।

अंजनी संगम—माछा से ५ मील दूर दक्षिण तट पर अंजनी नदी

का संगम है। संगम पर **गौरी तीर्थ** है। इसे **शाण्डिलेश्वर तीर्थ** भी कहते हैं। इन्द्र की यहाँ ब्रह्महत्या दूर हुई थी। महर्षि शाण्डिल्य ने यहाँ यज्ञ तथा तप किया था। इटारसी से ४१ मील पर पिपरिया स्टेशन है। पिपरिंया से यहाँ तक पक्की सड़क है।

गोमुखा घाट—टिघरिया-होशंगाबाद से प्रवाह की ओर १७ मील है। यहाँ ही गोमुखा घाट है। गोकर्णेश्वर तथा अन्य कई मन्दिर हैं।

हत्याहरण नदी का संगम—टिघरिया से ४मील दूर दक्षिण तट पर कुलेरा या कुन्तीपुर घाट है। यहाँ ही हत्याहरण नदी का संगम है। लक्ष्मी कुण्ड है। माता कुन्ती देवी के साथ पाण्डवों ने यहाँ निवास किया था।

भीम कुण्ड—कुलेरा से एक मील दूर आंवरीघाट है। नर्मदा के मध्य में पहाड़ी टीले पर भीमकुण्ड है। पाण्डव यहाँ भी कुछ काल रहे थे। मध्य रेलवे की बम्बई-दिल्ली लाइन पर इटारसी से १६ मील पूर्व धर्मकुण्डी स्टेशन है। वहां से यहां के लिए मार्ग है। धर्मकुण्डी से यह १४ मील है।

इंदाना नदी संगम—आँवरी घाट से ३½ मील दूर इंदाना नदी नर्मदा से दक्षिण तट पर मिलती है। यहाँ चतुर्मुख महादेव का मन्दिर है।

गंजाल नदी का संगम—इंदाना संगम से २० मील दूर गोंदागांव है। धर्मकुण्डी से २३ मील और इटारसी से ३९ मील पूर्व टिमरनी स्टेशन है। वहां से यह स्थान १४ मील है। पक्की सड़क है नर्मदा के दक्षिण तट पर गंजाल नदी का संगम है। गंजाल में शाहजपुरी पत्थर मिलता है जिन पर वृक्षादि के चित्र होते है। संगम पर गंजालेश्वर मन्दिर है।

गोनी नदी संगम—गोंदा गांव से १२ मील दूर नर्मदा के उत्तर तट पर गोनी नदी मिलती है। यहां जमदग्नि ऋषि ने तप किया था।

बागदी संगम—गोनी संगम से २ मील पर मेलाघाट है। मेलाघाट से १ मील पर नेमावर नगर है। उसके सामने दक्षिण तट पर हँडिया नगर है। हरदा स्टेशन से हंडिया तक १३ मील लम्बी पक्की सड़क है। कुबेर ने यहां तप किया था। जमदग्नि ऋषि ने भी यहां तप किया था। यहां नर्मदा में सूर्यकुण्ड है। जो गरमी में दीखता है। इसे नर्मदा का नाभिस्थान कहा जाता है। हंडिया नेमावर नगरों से ६ मील दूर उत्तर तटपर बागदी संगम है। यह कालभैरव की तपोभूमि है।

दाँतोनी संगम—बागदी संगम से ८ मील दूर, नर्मदा के उत्तर तट

पर दान्तोनी नदी का संगम है। हरणेश्वर, शिव तथा कालभैरव के मन्दिर हैं। कालभैरव ने यहां मृगकपधारी को वरदान दिया था, ऐसा पौराणिक आख्यान है।

पुनघाट—फतहगढ से ११ मील नर्मदा के दक्षिण तट पर खंडवा से ४४ मील पर खिरकिया स्टेशन है। वहां से पुन घाट १२ मील है। स्टेशन से यहां तक सड़क है। यहां गौतमेश्वर का प्राचीन मन्दिर है गौतम ऋषि की तपोभूमि है।

धर्मपुरी—पुनघाट के सामने उत्तर तट पर धर्मपुरी है। पास ही नर्मदा में एक छोटे टापू पर पत्थरों के दो ढेर हैं। ये भीमसेन की कांवर कहे जाते हैं। धर्मपुरी से १ मील पर **मानधारा** का नर्मदा में प्रपात है।

(यही धर्मपुरी और पुन घाट हैं जिनके विषय में असत्य, काल्पनिक कह कर अज्ञात जीवनी को कल्पित उपन्यास लिखने तक का साहस किया गया। 'हा ! हन्त ! हन्त ! हता मनस्विता'। काल भैरव को भी पढ़िये)

कालभैरव की गुफा—धर्मपुरी से १३ मील पर जंगल मार्ग से वारंगा नाले के पास कालभैरव का स्थान है। नर्मदा तट से यह स्थान ५ मील दूर है। यहाँ पर्वत की तली में कालभैरव की गुफा है।

मान्धाता ओंकारेश्वर—पश्चिमी रेलवे की अजमेर-खण्डवा लाइन पर खंडवा से ३७ मील पहले ओंकारेश्वर रोड स्टेशन है। यह स्थान इन्दौर से ४७ मील है। यहाँ से ओंकारेश्वर ७ मील दूर है। स्टेशन से ओंकारेश्वर-मान्धाता के पास तक सड़क है। मोटर बस चलती है। बैल-गाड़ी भी मिलती है।

यहाँ दो ज्योतिर्लिङ्ग हैं ओंकारेश्वर और अमलेश्वर। ज्योतिर् लिंग १२ की गिनती में यह एक ही गिना जाता है।

नर्मदा के बीच में मान्धाता टापू पर ओंकारेश्वर लिंग है। इस द्वीप पर महाराजा मान्धाता ने ओंकार की उपासना की थी। शंकर ओंकार है ओंकार भी शंकर परमात्मा है महाराजा मान्धाता की साधना के कारण इसका नाम मान्धातातीर्थ पड़ गया। मान्धाता टापू का क्षेत्रफल लगभग १ मील है। यह एक पहाडीहै, जो एक ओर कुछ ढालू है। इसके एक ओर नर्मदा की प्रधान धारा बहती है, जैसे व्यासेश्वर (व्यासाश्रम) के दोनों ओर दो धारायें हो गई हैं। दूसरी ओर की धारा को **कावेरी** कहते हैं। द्वीप के अंत में यह कावेरी धारा नर्मदा में ही मिल जाती है। इस मान्धाता

द्वीप का आकार 'ऊँकार' से मिलता है इसका चित्र-विहंगम भी ऐसा ही छपा है।

विष्णुपुरी—मोटर या बैलगाड़ी जहां यात्रियों को छोड़ती है उसे विष्णुपुरी कहते हैं। यहाँ पक्का घाट बना है। नौका से धारा पार करके मान्धाताद्वीप में पहुँचते हैं। उस ओर भी पक्का घाट है। घाट के पास कोटि तीर्थ या चक्र तीर्थ हैं। स्नान करके ऊपर ओंकारेश्वर मन्दिर में जाते हैं। मन्दिर तट पर ही ऊँचाई पर है। इसकी परिक्रमा तीन दिन में की जाती है। पहले दिन की परिक्रमा में ४० दर्शनीय स्थान तथा मन्दिर हैं। दूसरे दिन की परिक्रमा में ५० स्थानों का दर्शन किया जाता है।

ब्रह्मपुरी—तीसरे दिन की यात्रा में **ब्रह्मपुरी** की यात्रा की जाती है। विष्णुपुरी के पास गोमुख से बराबर जल गिरता रहता है। नर्मदा में यह जल जहाँ गिरता है, उसे **कपिल संगम तीर्थ** कहते हैं। यह धारा गोकर्ण और महाबलेश्वर लिंगों पर गिरती है। जल त्रिशूल भेद कुण्ड से आता है। इन्द्रेश्वर, व्यासेश्वर, अमलेश्वर के मन्दिर हैं।

अमलेश्वर—अमलेश्वर भी ज्योतिर्लिंग है। अमलेश्वर प्रदक्षिणा में वृद्धकालेश्वर, वाणेश्वर मुक्तेश्वर, और तिल भाण्डेश्वर के मन्दिर हैं। १३ देवों के और मन्दिर हैं।

मुख्य स्थान—मुख्य मन्दिर ओंकारेश्वर जी का है। द्वीप पर ही **कावेरी संगम** के पास गोरी सोमनाथ का मन्दिर है। कहते हैं यहाँ कुबेर ने तपस्या की थी।

पशुपति नाथ—कावेरी पर पशुपतिनाथ का मन्दिर है।

च्यवनाश्रम—कावेरी संगम से ४ मील पश्चिम में च्यवनाश्रम है।

सप्त मातृका तीर्थ—कुबेर भण्डारी से लगभग तीन मील नर्मदा के दक्षिण तट पर स्थित है। ओंकारेश्वर से नौका से आते हैं। **वाराही, चामुण्डा, ब्रम्हाणी, वैष्णवी, इन्द्राणी, कौमारी, और माहेश्वरी** सात माताओं के मन्दिर हैं। सात मात्रा कहते हैं।

५२ भैरवों के मन्दिर—६४ **योगिनियों** व सप्त मातृका या सात मात्रा से लगभग ७ मील दूर नर्मदा के उत्तर तट से लगभग ३ मील सीता वाटिका है। कहते हैं यहाँ वाल्मीकि ऋषि का आश्रम था। श्री जानकी जी ने वास किया था। यहाँ ६४ योगिनियों और ५२ भैरवों की विशाल मूर्त्तियाँ हैं। पास में सीताकुण्ड, रामकुण्ड और लक्ष्मणकुण्ड हैं।

सीता वाटिका से सघन जंगल के रास्ते यह स्थान ६ मील दूर है। ओंकारेश्वर रोड स्टेशन से २० मील है। और उसके पास के स्टेशन सनावद से १६ मील दूर है। मध्य रेलवे की बम्बई—दिल्ली लाइन पर खंडवा से २१ मील पर बीर स्टेशन है। वहां से १५ मील पुनासा गांव तक पक्की सड़क है। आगे ५ मील पैदल मार्ग है।

धावडी घाट—यहां नर्मदा का सबसे बड़ा प्रपात है। लगभग ५० फुट ऊंचे से जल गिरता है। यहाँ आस-पास वन हैं। प्रपात के नीचे कुण्ड है। इस कुण्ड से बाणलिंग निकलते हैं। अधिकांश लोग नर्मदेश्वर लिंग यहां से ले जाते हैं। अनेक वार बहुत सुन्दर लिंग मिलते हैं।

कोटेश्वर—ओंकारेश्वर से ४ मील दूर नर्मदा के प्रवाह की दिशा में उत्तर तट पर कोटेश्वर महादेव का मन्दिर है।

नीलगढ़ तीर्थ—ओंकारेश्वर से १ मील पर नीलगढ़ तीर्थ है। यहां करज्जेश्वर महादेव का मन्दिर है। ओंकारेश्वर से उधर का मार्ग वन पर्वत का है।

नागेश्वर कुण्ड—ओंकारेश्वर स्टेशन से नर्मदा पुल पार करने के बाद बडवाहा स्टेशन मिलता है। यह एक छोटा नगर है। यहाँ चोरल नदी के किनारे जयन्ती देवी का मन्दिर है। नगर में नागेश्वर कुण्ड है। उसके बीच में शिव मन्दिर है। नगर से नर्मदा घाट दो मील है।

भस्म टीला—बड़वाहा स्टेशन से २ मील नर्मदा घाट तक जाकर या ओंकारेश्वर रोड़ से १ मील नर्मदा का रेलवे पुल पार करके किनारे-किनारे जाने पर काड़ा ग्राम के पास यह स्थान है। कहा जाता है यहाँ भूमि से यज्ञ-भस्म निकलती थी किन्तु कई वार नर्मदा की बाढ़ का जल ऊपर बह चुका है। इससे अब यहाँ कुछ नहीं।

शुक्र ताल में एक शिव का मन्दिर आधा लगभग १२-१५ फुट रेत में दबा हुआ आज भी खड़ा है। पास में आमों का बगीचा है।

विमलेश्वर—बड़वाड़ा स्टेशन से ५ मील, और भस्म टीला वाले घाट से ३ मील दूर यह विमलेश्वर मन्दिर है। पास में टीले पर चन्द्रेश्वर महादेव का मन्दिर है।

गोमुख घाट—विमलेश्वर से ५ मील दूर नर्मदा के दक्षिण तट पर नीलगंगा कुण्ड है, जिससे गोमुख द्वारा जल गिर कर नर्मदा में आता है। वहाँ नील कण्ठेश्वर मन्दिर है।

गंगेश्वर—गोमुख से लगभग ३ मील दूर नर्मदा के मध्य में एक पक्के चबूतरे पर गंगेश्वर महादेव हैं। यहां किनारों पर तो नर्मदा पश्चिम को बहती है किन्तु चबूतरे के पास धारा पूर्व की ओर है। यहाँ मातंग ऋषि का आश्रम था।

खुलार संगम—गंगेश्वर से एक मील दूर नर्मदा के उत्तर तट पर खुलार नदी का संगम है। उसके पास दारकेश्वर मन्दिर है। कहते हैं कृष्ण-चन्द्र जी के सारथी दारुक ने यहाँ शिव की आराधना की थी। मन्दिर में अर्ध नारी नटेश्वर की मूर्ति है, मन्दिर के पास गुफा है।

मर्दाना—गंगेश्वर से लगभग ११ मील दूर नर्मदा के दक्षिण तट पर यह स्थान है। राजा मयूरध्वज की यहाँ राजधानी बतायी जाती है। मयूरेश्वर शिवमन्दिर है। बड़वाहा से यह स्थान लगभग २० मील है।

पिप्पलेश्वर—मर्दाना से ६मील दूर नर्मदा के उत्तर तट पर पिप्पले-श्वर मन्दिर है।

मण्डलेश्वर—पिप्पलेश्वर (पीतामली गाँव) से ११ मील दूर है। यहाँ गुप्तेश्वर महादेव और श्री रामचन्द्र जी के मन्दिर हैं। बडवाहा या खरगोल से यहाँ तक पक्की सड़क है।

माहिष्मती पुरी—महेश्वर :—पश्चिम रेलवे की अजमेर-खण्डवा लाइन पर ओंकारेश्वर रोड के पास बडवाहा स्टेशन है। बडवाहा-महेश्वर से ३५ मील दूर है। पक्की सड़क है। मोटर बसें चलती हैं।

महेश्वर मध्य भारत का प्रसिद्ध नगर है। नर्मदा के उत्तर तट पर बसा है। यहाँ अहिल्या बाई की समाधि है। प्राचीन नाम माहिष्मती पुरी है। यह कृतवीर्य के पुत्र सहस्रार्जुन की राजधानी थी। जगद्गुरु शंकरा-चार्य से शास्त्रार्थ करने वाले मण्डन मिश्र भी यहाँ ही रहते थे। नगर के पश्चिम मतंग ऋषि का आश्रम तथा मातंगेश्वर मन्दिर है। मन्दिर के समीप भर्तृहरि गुफा है। नर्मदा में द्वीप के मध्य बाणेश्वर मन्दिर है। महेश्वर की गणना पंचपुरियों में है। कहा जाता है—'महिष्मान् नामक चन्द्रवंशी नरेश ने इसे बसाया था। महिष्मान् के वंश में ही सहस्रार्जुन हुए। सहस्रार्जुन का यहां समाधि मन्दिर है। महेश्वर लिंग नर्मदा के मध्य में है, केवल गर्मियों में देखा जा सकता है। स्वाहा देवी की भी मूर्ति है। संगम पर सप्त मातृकाओं का मन्दिर है। अहिल्येश्वर आदि अनेक

मन्दिर हैं। माहिष्मती गुप्त काशी कही जाती है। काशी के समान इसका महत्व है।

महेश्वरी संगम—थोड़ी दूर पर महेश्वरी नदी का संगम है। **ज्वालेश्वर मन्दिर** है।

सहस्रधारा—महेश्वर से तीन मील आगे सहस्रधारा स्थान है। यहाँ नर्मदा चट्टानों के मध्य से बहती है। गरमी में उसकी धारा अनेक धाराओं में बंट जाती है, इससे इस स्थान का नाम सहस्रधारा है।

माण्डव गढ़—पश्चिम रेलवे की अजमेर-खंडवा लाईन पर इन्दौर-से १३ मील दूर महू स्टेशन है। महू से माण्डव गढ़ ३४ मील है। धार-नगर से २२ मील है। दोनों स्थानों तक पक्की सड़क है। महू से मोटर बस जाती है। माण्डव गढ़ पर्वत के ऊपर है। यहाँ रेवा कुण्ड है। अनेक मन्दिर हैं। आल्हा के हाथ की सांग गड़ी है।

पगारा—माण्डव गढ़ से नर्मदा प्रवाह के ऊपर की ओर १० मील पर है। नर्मदा जी की धारा यहां से ७ मील है। वक्रतुण्ड गणेश का मन्दिर है।

धर्मपुरी—पगारा से ८ मील नर्मदा के उत्तर तट पर है। यहाँ इस नाम का द्वीप भी नर्मदा में है।

कुब्जानदी—धर्मपुरी से थोड़ी दूर पर कुब्जा नदी का संगम होता है। कुब्जा कुण्ड है। बिल्वामृत तीर्थ है। कहा जाता है यहां **दधीचि ऋषि** का आश्रम था। महर्षि ने देवताओं को अपनी अस्थियाँ दी थीं।

साटक संगम—धर्मपुरी से ७ मील नर्मदा के दक्षिण तट पर खल घाट है। यह ब्रह्मा का तपः स्थल कहा जाता है। यहाँ यज्ञ कुण्ड से कपिल गौ प्रकट हुई थी। इस स्थान को कपिल तीर्थ कहते हैं। पास ही साटक नदी का संगम है। संगम के पास नर्मदा में ६० शिवलिंग हैं।

कारम और बूटी का संगम—खल घाट से तीन मील नर्मदा के उत्तर तट पर जलकोटि ग्राम है। इस ग्राम के पास नर्मदा में कारम और बूटी नाम की नदियाँ मिलती हैं। इसे त्रिवेणी तीर्थ कहते हैं।

कसरोद—धर्मपुरी से २६ मील पर कसरोद है। दक्ष प्रजापति के पुत्रों ने यहां सहस्रयज्ञ किये थे। इसे सहस्रयज्ञ तीर्थ भी कहते हैं।

बोधबाडा—गांगली से ४ मील उत्तर तट पर है। देव पथ लिंग है। देवताओं ने यहाँ से नर्मदा-परिक्रमा आरम्भ की थी।

चिखलदा—बोधवाडा से २ मील उत्तर तट पर है। सप्त ऋषियों ने यहाँ तप किया था।

राजघाट—चिखलदा के सामने नर्मदा के दक्षिण तट पर है। अनेक मन्दिर हैं। इसे वावण गंगा और रोहिणी तीर्थ भी कहते हैं।

कोटेश्वर—चिखलदा से सात मील है। नर्मदा के उत्तर तट पर बागली नदी का संगम है, संगम के पास कोटेश्वर तीर्थ है।

मेघनाद तीर्थ—२ मील है। दोनों ओर अनेक शिवलिंग हैं। उनमें से एक मेघनाद द्वारा स्थापित है। पास ही कुम्भकर्ण और रावण के तप के स्थान हैं।

गोयद नदी का संगम—दक्षिण तट पर १ मील है। इसे **मनोरथ तीर्थ** कहते हैं।

धर्मराय तीर्थ—उत्तर तट पर ५ मील है। धर्मराज ने यहाँ यज्ञ किया था। धर्मेश्वर मन्दिर है।

हिरण फाल तीर्थ—३ मील पर है। मार्ग घोर जंगल का है। नर्मदा चट्टानों के बीच बहती है। धारा संकरी है, हिरन फांद सकता है। कहा जाता है कि हिरण्याक्ष ने यहां तप किया था।

शूल पाणि—हिरण फाल से पैदल मार्ग है। अथवा चाणोद से नौका द्वारा है। बहुत प्रख्यात तीर्थ है। घोर वन में स्थित है। मेले के समय यात्री अधिक आते हैं। महा शिवरात्रि पर चैत्र शुक्ला एकादशी से अमावस्या तक यहां मेला लगता है। अन्य समय बाघ आदि का भय रहता है। दूसरा नाम **सुर पाणेश्वर** है। ठहरने के लिए धर्मशालाएं हैं। राजघाट से ही शूलपाणि का वन आरम्भ हो जाता है। देवली से २४ मील दूर दक्षिण तट पर भृगु पर्वत पर स्थित है। अन्य मन्दिरों के साथ पाण्डवों के छोटे मन्दिर हैं। शंकर ने आघात कर सरस्वती नदी प्रकट की थी जो नर्मदा में मिल गयी है। त्रिशूल आघात के स्थल पर कुण्ड है। इसे **चक्रतीर्थ** कहते हैं। दीर्घतमा ऋषि का यहाँ उद्धार हुआ, वह भी कुल सहित। काशीराज चित्रसेन ने यहां महादेव के गण का पद पाया।

भृगुतुंग पर्वत—शूलपाणि मन्दिर के दक्षिण भृगुतुंग पर्वत है। परिक्रमा करके देवगंगा होते हुए रुद्रकुण्ड मिलता है।

मार्कण्डेय गुफा— पास में मार्कण्डेय गुफा है। यहाँ मार्कण्डेय ने तप किया था।

रणछोड़ जी का मन्दिर—१ मील आगे दक्षिण तट पर रणछोड़ जी का प्राचीन मन्दिर है। मूर्ति विशाल है। मन्दिर जीर्ण है।

कपिल तीर्थ— सामने उत्तर तट पर है। यहाँ कपिल मुनि ने तप किया था। कपिलेश्वर मन्दिर है।

मोक्ष गंगा— शूलपाणि से ४ मील दक्षिण तट पर मोखड़ी है। उस के पास मोक्ष गंगा नदी का संगम है। नर्मदा में छोटा प्रपात है। चाणोद से नौका द्वारा शूलपाणि आने वालों को पौना मील चलकर यह प्रपात मिलता है। आगे चलकर नौका में बैठकर सुरपाणेश्वर जा सकते हैं। प्रपात के समीप पौन मील के भीतर नौका नहीं चल पाती।

बड़ गाँव— मोखडी के सामने कपिलतीर्थ से ४ मील उत्तर तट पर है।

पिपरिया—मोखडी से ४ मील उलूक तीर्थ। उलूक से ५ मील पिपरिया है। पिप्पलाद ऋषि की तपोभूमि है।

मार्कण्डेय आश्रम— पिपरिया से १ मील नर्मदा के उत्तर तट पर **गमोण तीर्थ** है। यहाँ **भीम कुल्या** नदी का संगम है। मार्कण्डेय ऋषि का आश्रम यहाँ था। मार्कण्डेय स्थापित मार्कण्डेश्वर महादेव का मन्दिर है। उत्तर तट का शूलपाणि वन यहाँ समाप्त होता है।

चाणोद— पश्चिम रेलवे की जम्बूसर से उदयपुर जाने वाली लाइन के डभोई स्टेशन से चाणोद तक गाड़ी जाती है। स्टेशन से नगर लगभग आधा मील दूर नर्मदा किनारे हैं। अनेक मन्दिर और चण्डादित्य, चण्डिका देवी, चक्रतीर्थ, कपिलेश्वर, ऋणमुक्तेश्वर, पिंगलेश्वर, नन्दाह्रद सप्त तीर्थ हैं, पूर्णिमा को मेला लगता है।

कर्णाली—ओर नदी को नर्मदा-संगम के पास पार करना पड़ता है। लगभग एक मील चाणोद से ऊपर की ओर है। ओर-नर्मदा संगम को लोग **पश्चिम प्रयाग** भी कहते हैं। बहुत से नवीन मन्दिर हैं। प्राचीन सोमनाथ का है। कुबेर मन्दिर को कुबेर भण्डारी कहते हैं।

सीनोद—डभोई से ४० मील पर है। कर्णाली से थोड़ी दूर है। नर्मदा के उत्तर तट पर है। शिवपुरी भी कहते हैं।

व्यासाश्रम— चाणोद से ५ मील नीचे प्रवाह की ओर है। नर्मदा

के मध्य में टापू है। पास में बरकाल कसबा है। मोटर रोड है। रेलवे स्टेशन तक मोटर चलती है। दूसरी ओर नर्मदा पर सामने शुकेश्वर तीर्थ है। यहाँ बलराम जी ने भी तप किया था। यज्ञ वट है। व्यास जी का आश्रम तथा व्यासेश्वर मन्दिर है। कहा जाता है व्यास जी ने अपने तपोबल से एक धारा आश्रम के दक्षिण बहा दी थी। यही स्थान नर्मदा का द्वीप है।

परिशिष्ट—२

आबू के स्थान

आबू—पश्चिम रेलवे की अहमदाबाद—दिल्ली लाइन पर आबू रोड प्रसिद्ध स्टेशन है। स्टेशन से आबू पर्वत १७ मील है। पक्की सड़क है। मोटर बस चलती है।

आबू शिखर १४ मील लम्बा और दो से चार मील तक चौड़ा है। कहा जाता है यह आबू या अर्बुद गिरि हिमालय का पुत्र है। 'हिमवत्सुत-मर्बुदम्" महाभारत वनपर्व तीर्थयात्रा अ० ८२ श्लोक ५५। महर्षि वसिष्ठ का यहां आश्रम था। मथुरा से द्वारका जाते हुए भगवान् कृष्ण भी यहां पधारे थे।

आबू पर्वत पर जाने के दो मार्ग हैं। एक नया, दूसरा पुराना। पुराने मार्ग में मानपुर से आगे हृषीकेश का मन्दिर मिलता है। कहते हैं यहां कृष्णचन्द्र ने रात्रि में विश्राम किया था। इस स्थान को द्वारिका द्वार कहते हैं।

चन्द्रावती नगर—द्वारका द्वार के आस-पास चन्द्रावती नगर के खण्डहर हैं। मन्दिर के पास दो कुण्ड हैं।

अम्बरीष आश्रम—थोड़ा आगे अम्बरीष आश्रम है। अम्बरीष ने यहां तप किया था। कुछ आगे एक चट्टान पर बहुत से मनुष्य एवं पशुओं के पद-चिन्ह हैं।

यहाँ से लौट कर फिर नवीन मार्ग से आबू पर जाना पड़ता है। चार मील आगे जाने पर पर्वत की चढ़ाई आरम्भ होती है।

मणि कर्णिका तीर्थ—मार्ग में धर्मशालाएँ हैं। वहाँ से कुछ आगे मणिकर्णिका तीर्थ है। यहाँ यात्री स्नान करते हैं। कर्णेश्वर शिवमन्दिर है। सूर्य कुण्ड भी पास ही है।

वसिष्ठ आश्रम—तीन मील और आगे जाकर लगभग ७५० सीढ़ी नीचे उतरने पर एक कुण्ड है, उसमें गोमुख से जल गिरता रहता है। यहां मन्दिर में वसिष्ठ एवं अरुन्धती जी की मूर्ति है। यहां वसिष्ठ जी ने तप किया था।

गौतम आश्रम—वसिष्ठ आश्रम के सामने ३००सीढ़ी नीचे उतरकर नाग कुण्ड है। यहाँ नाग पंचमी को मेला लगता है। महर्षि वसिष्ठ की ध्यानस्थ मूर्ति है। पास ही बछड़े के साथ कामधेनु तथा अर्बुदा देवी की मूर्त्तियाँ हैं। कहते हैं यहाँ महर्षि गौतम का आश्रम था। मन्दिर में न्याय-प्रणेता महर्षि गौतम की मूर्ति है। यहाँ तक आने का मार्ग कठिन है। थोड़े ही यात्री यहाँ आते हैं। ऋषि के लिये कुछ दुर्गम नहीं था।

पंगु तीर्थ—गोमुख से लौट कर फिर नीचे उतरना पड़ता है। आबू के सिविल स्टेशन से एक मील उत्तर पहाड़ पर देलबाड़ा में पाँच जैन मन्दिर हैं। पास ही कुंवारी कन्या का मन्दिर है। थोड़ी दूर आगे यह पंगु तीर्थ है। यहाँ एक ब्राह्मण ने तप किया था। समीप में एक बावली है।

अग्नि तीर्थ—पंगु तीर्थ से थोड़ा आगे अग्नि तीर्थ है।

यज्ञेश्वर—अग्नि तीर्थ के पास यज्ञेश्वर शिव का मन्दिर है।

पिंडारक तीर्थ—यज्ञेश्वर के समीप ही पिण्डारक तीर्थ है।

नाग तीर्थ—देलवाड़ा से चार मील पर ओरिया गाँव है। ओरिया से थोड़ी दूर जावई ग्राम में यह नागतीर्थ है। यहाँ छोटा-सा सरोवर और बाण गंगा है। नाग पंचमी को मेला लगता है।

कपिला तीर्थ—आबू बाजार के पीछे नखी तालाब है। कहते हैं इसे देवताओं ने नख से खोदा था।

राम गुफा—कपिला तीर्थ के पास ही **चम्पा गुफा, राम गुफा, राम कुण्ड** हैं। राम गुफा में ही योगिवर ऋषि दयानन्द ने तीन वर्ष रह कर योग-सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। दक्षिण की ओर शिखर पर रामकुण्ड अवस्थित है। इसके पास ही राम गुफा है।

गोपी चन्द गुफा—ओरिया गांव से एक मील पर **अचलेश्वर** शिव मन्दिर है। **शान्तिनाथ** का जैन मन्दिर सामने है, थोड़ी दूर पर **रेवतीकुण्ड** है। वहाँ से लगभग एक मील पर **गोमती** कुण्ड है। इसे **भृगु आश्रम** कहते

हैं। यहां शंकर जी का मन्दिर है। ब्रह्मा जी की मूर्ति है। इस स्थान से लौटते समय गोपीचन्द गुफा मिलती है।

अचलगढ़—अचलेश्वर से आगे अचलगढ़ है। चारों ओर पर्वतों का कोट है। यहाँ चौमुखी जी के मन्दिर की मुख्य मूर्ति १२० मन की है। पंच धातु की बनी है।

भर्तृहरि गुफा—आगे भर्तृहरि गुफा है।

परिशिष्ट—३

जयपुर के स्थान

गलता तीर्थ—जयपुर नगर के सूर्यपोल के बाहर पूर्व की पहाड़ियों के मध्य में **गलता तीर्थ** है। पयहारी जी का मन्दिर और उनकी धूनी है। यहाँ पर नीचे कुण्ड से सदा गरम पानी बहता रहता है। राजस्थान में यह तीर्थ प्रख्यात है। मेला लगता है। गालव ऋषि ने यहाँ तपस्या की थी।

आमेर—जयपुर से ५ मील पर यह कस्बा है। जयपुर की प्राचीन राजधानी अम्बर में ही थी। यहाँ एक **गलता टीला है**। यही गालव ऋषि की तपोभूमि है। टोले के ऊपर सात कुण्ड हैं। इस टीले में से जल का झरना सदा गिरता रहता है।"—कल्याण तीर्थ अंक

अज्ञात जीवनी में इस प्रकार लिखा है—"जयपुर आकर वहाँ मैंने गलता तीर्थ गालव ऋषि की तपोभूमि.....में योगी, तपस्वी और साधकों का अनुसन्धान किया था.....।"

प्रथम कालम १० मई १९७०

"प्राचीन राजधानी और राजस्थान की प्रसिद्ध अम्बर नगरी में गलता टीला है, उसमें गालव ऋषि की तपोभूमि में एक साधु रहते हैं...।" —वहीं

पुष्कर—पुष्कर तीर्थों के गुरु तीर्थराज माने जाते हैं। मार्ग—पश्चिमी रेलवे की अहमदाबाद-दिल्ली लाइन पर अजमेर स्टेशन है। अजमेर जहाँ दयानन्द वाटिका, ऋषि की महानिद्रा-स्थली, वैदिक यन्त्रालय, दयानन्द भवन आदि हैं। अजमेर से पुष्कर ७ मील है। ताँगे तथा मोटर बसें मिलती हैं। पक्की सड़क हैं।

पुष्कर सरोवर तीन हैं—**ज्येष्ठ, मध्य और कनिष्ठ ज्येष्ठ पुष्कर** पर ब्रह्मा जी का मन्दिर है। यहां ऋषिवर ठहरे थे और वेदभाष्य भी किया था। मन्दिर में ब्रह्माजी के अतिरिक्त अनेक मूर्तियाँ हैं।

सावित्री देवी का मन्दिर—पुष्कर सरोवर से एक ओर सावित्री

देवी का मन्दिर है। उसमें तेजोमयी सावित्रीदेवी की प्रतिमा है। दूसरी चोटी पर गायत्री मन्दिर है। गायत्री मन्दिर ५१ शक्तिपीठों में है।

नाग **पर्वत**—पुष्कर से लगभग १२ मील दूर प्राची सरस्वती और नन्दा नदियों का संगम है। पुष्कर के पास नाग पर्वत पर बहुत-सी गुफाएं हैं। **भर्तृहरि गुफा** दर्शनीय है। भर्तृहरिशिला भी है। ऋषि ने इधर योगियों का सन्धान किया था।

सरस्वती नदी—पुष्कर सरोवर से सरस्वती नदी निकलती है जो **साबरमती** से मिलने के बाद लूना नदी कही जाती है। पुष्कर में सरस्वती नदी के स्नान का सर्वाधिक महत्त्व है। यहाँ सरस्वती का नाम प्राची सरस्वती है। यहाँ सरस्वती के पाँच नाम हैं :—१ सु प्रभा २ काञ्चना ३ प्राची ४ नन्दा ५ विशालिका यज्ञ। पर्वत के ऊपर से निकलते जल स्रोत का उद्गम परम पवित्र है। दर्शन को पापनाशक मानने वाले मानते हैं। गोमुख से पानी गिरता है। यज्ञ पर्वत में नीचे एक स्थान पर नागतीर्थ है।

इसी लूणी नदी का नाम ही तो सरस्वती है। नन्दा ही का नाम लूणी भी होगा। इसी को या अन्य किसी धारा को साबरमती कहा गया होगा।

परिशिष्ट—४

काश्मीर के स्थान

ऋषि ने पूना-प्रवचन में काश्मीर से नेपाल तक भ्रमण का उल्लेख किया है। अतः ऋषि काश्मीर अवश्य गये थे। 'अज्ञात जीवनी' में निम्नलिखित स्थान और भूगोल ठीक है।

श्री नगर से **पहलगाँव** पहुँचे। आजकल तो मोटरें चलती हैं। काश्मीर-अमरनाथ यात्रा भी हम कर चुके हैं। पहलगाँव से अमरनाथ २७ मील है। मुख्य यात्रा श्रावण-पूर्णिमा को होती है। हम लोग भीड़ से बचने के लिए ४ दिन पहले अमरनाथ होकर लौट आये थे। पण्डे लोग पहले ही अपने-अपने यात्रियों को घेर लेते हैं। हमारे पण्डे ने भी हमें आराम से ठहराया। पहलगाँव में अच्छे होटल हैं। ठहरने की व्यवस्था उनमें या अन्य स्थानों पर भी हो जाती है। अमरनाथ के लिए घोड़े कुली यहाँ से मिल जाते हैं।

चन्दन वाडी—८ मील पर चन्दनवाडी है। मार्ग अच्छा है। यहाँ भी अच्छे होटल हैं, दूकानें हैं। लिदर नदी के किनारे-किनारे मार्ग जाता है।

शेष नाग—या शेषम् नाग कहते हैं। डाक बंगला और यात्रियों के ठहरने के लिये टीन की छत के मकान हैं। वर्षा होने पर बड़ा कष्ट होता है। तम्बू लाया जाए तो अच्छा रहता है। चन्दनवाडी-शेष नाग के मध्य में ३ मील की कड़ी चढ़ाई है। इसे पिस्सु घाटी बोलते हैं। चढ़ते-उतरते पसीना आ जाता है। हिम के मध्य से मार्ग जाता है। मूंज के जूते, जूतों पर पहन लेने से जूते फिसलते नहीं हैं। ठण्डे भी कम होते हैं। यात्री-मार्ग को छोड़ सीधे मार्ग पर चल पड़ने से मार्ग अत्यन्त कठिन और संकरा हो सकता है। तब भगवान् की याद तो अच्छी आती है। तीर्थ-यात्राओं का यही मुख्य फल है। शेष नाग पर पहाड़ों के मध्य रास्ते के साथ ही १००।१५० फुट नीचे स्वच्छ झील है। झील पर खड़े आदमी

छोटे-छोटे बालक प्रतीत होते हैं। इसमें सात मुख वाला एक ही सर्प रहता है। बृहस्पतिवार सूक्ष्मेक्षण से हमसे पहले पहुँचने वाले गुजराती छः सातयात्रियों ने बहुत ध्यान देने से देखा था। लौटती वार उनकी सूक्ष्मेक्षण-+दूरवेक्षणा का प्रयोग किया पर हमें, उन्हें भी कुछ दिखाई नहीं दिया। झील सुषमा देखने योग्य है। यात्रा से कुछ पहले ढाबा या सादा होटल खुल जाता है। ऐसे स्थानों पर भोजन महँगा मिलता ही है। पवित्र भी नहीं। मांस तो सर्वत्र पकता ही है। ऐसे होटल प्रायः सरदारों के साहस से ही चलते हैं। रात्रि यहाँ विश्राम किया।

पञ्चतरणी—८॥ मील आगे पंचतरणी है। मार्ग हिमाच्छन्न है। चिन्हों से चिन्हित कर दिया जाता है। मेले के अवसर पर वर्षा होने लगी थी। बर्फ बह गई। मार्ग का पता नहीं चला। अनुमान से कठोर भूमि देख कर निकल गए। भगवान् ले ही गया। बर्फ में तो रुकना ही पड़ता। वर्षा में भी चढ़ाई पर फिसलन हो जाती है। पैर को जमाना पड़ता है। पंचतरणी में डाक बंगले में स्थान मिल गया था। और भी मैले स्थान हैं। यहाँ सामान रख अमरनाथ घोड़े पर पहुँचे थे। मार्ग में हिमाच्छन्न मार्ग कई स्थानों पर आते हैं। पाँच धारायें हैं। स्नान से पुण्य माना जाता है। अमरनाथ से लौटकर आने पर कपड़े उतार देने से भयावह ठण्ड चढ़ गई थी। केसर की गोली चाय से लेने से प्राण बचे, नहीं तो ठण्डे ही हो जाते। स्नान की बात मन से जाती रही।

अमरनाथ—पञ्चतरणी से ३॥ मील है। मध्यान्होत्तर आते ही अमरनाथ चले गए थे। सायं लौट आये थे। बड़ी विशाल गुफा है। हिमस्तर पार करने के बाद समुद्र स्तर से १६,००० फुट ऊंचा स्थान है, गुफा की लम्बाई ६० फुट और चौडाई ३० फुट होगी या २५ फुट ऊंची होगी। 'प्राकृतिक हिम पीठ पर हिम निर्मित प्राकृतिक शिवलिंग हैं', यह बात निराधार है। जब टपकते स्रोत का पानी नहीं जमता तो जमी नदी से नीचे से हिम लाकर लिंग बनाते गुरुवर महाराज योगेश्वरानन्द जी ने देखा था। पूर्णिमा को तिथि अनुसार बढ़ता। कृष्णपक्ष में घटते-२ अमावस्या को नहीं रहता। यह सब किसी भक्त की भारी गप्प है। कबूतर और चिड़िया भी वहाँ अनेक देखे गए। उड़ जाते हैं फिर आकर बैठ जाते हैं। घोंसले भी होंगे। शीत में चले जाते होंगे।

परिशिष्ट—५

आसाम तथा नेपाल के स्थान

कामाख्या—यह आसाम देश में है। यहाँ आने के लिये छोटी लाईन की पूर्वोत्तर रेलवे लाईन से अमीन गांव आना होता है। आगे ब्रह्मपुत्र नदी को स्टीमर से पार करके मोटर द्वारा २॥ मील चलकर कामाख्या या कामाक्षी देवी आना होता है।

चाहे पाण्डु से रेल द्वारा गोहाटी आकर पुनः कामाक्षी देवी आ जायें। कामाक्षी देवी का मन्दिर पहाड़ी पर है। जो अनुमान से एक मील ऊंची होगी। इस पहाड़ी को नीलपर्वत भी कहते हैं। इस देश को काम-रूप असम या आसाम कहते हैं। इस देश में कई पीठ हैं।

इस मन्दिर को कूच बिहार के राजा विश्व सिंह और शिव सिंह ने बनवाया था। प्रथम मन्दिर १५६४ में काला पहाड़ ने तोड़ डाला था। इस को पहले आनन्द आख्या कहते थे। समीप ही छोटा-सा सरोवर है। आश्विन तथा चैत्र के नवरात्र में बड़ा मेला भरता है।

'५१ सिद्ध पीठों में कामरूप को सर्वोत्तम कहा है।

(महाभारत—१२।३०)

"परमेश्वर की पूजा, जप, हवन आदि करके यथेच्छ फल की प्राप्ति साधकों को सुलभ है।" (महाभारत—१२।३७)

उमानन्द शिव मन्दिर—पहाड़ी से उतरने पर ब्रह्मपुत्र नदी के मध्य में उमानन्द टापू में शिवमन्दिर है।

नवद्वीप धाम—पूर्वी रेलवे को हावड़ा-बरहरवा लाईन पर हावड़ा से ६६ मील दूर 'नवद्वीप धाम' स्टेशन है। नगर लगभग १ मील दूर है। श्री चैतन्य महाप्रभु की जन्मभूमि है। भजनाश्रम में ठहरने की सुविधा है। निश्चित दक्षिणा देने पर दर्शन कराया जाता है। दर्शनार्थ गौराङ्ग महाप्रभु की मिट्टी की अनेक लीलाओं की मूर्तियाँ हैं। पूजा नहीं होती। अनेक मन्दिर हैं।

शान्ति पुर—नव द्वीप से १२ मील पर शान्ति पुर है। गौडीय वैष्णवों का यहां श्री पीठ है। कार्तिक पूर्णिमा को मेला भरता है।

महाकालेश्वर—लिंगराज के अनेक मन्दिरों में एक है।

पुरी—पूर्वी रेलवे की हावड़ा वाल्टेयर लाईन पर कटक से २६ मील दूर खुरदा रोड स्टेशन है। वहाँ से पुरी तक लाइन जाती है। खुरदा से २८ मील है। कटक, भुवनेश्वर, खुरदा रोड आदि से मोटरें जाती हैं। अनेक ठहरने के स्थान हैं।

यहाँ स्नानार्थ ८ पवित्र तीर्थ हैं।

गंगा सागर—कलकत्ता से यात्री प्रायः जहाज में गंगा सागर जाते हैं। कलकत्ते से ३८ मील दक्षिण 'डायमण्ड हार्बर' स्टेशन है। वहाँ से नावें और जहाज भी गंगा सागर जाते हैं, सागर द्वीप ६० मील दक्षिण है।

थोड़े से साधु यहाँ रहते हैं। यह द्वीप १५० वर्गमील के लगभग है। वन्य प्रदेश है। प्रायः जनहीन है। समुद्र गंगा के संगम से कई मील उत्तर में वामन खल स्थान में एक प्राचीन मन्दिर है। एक जीर्ण मन्दिर भी है। चन्दन पीडि वन में विशालाक्षी का मन्दिर है। मेले के स्थान पर पहले गंगा यहीं सागर में मिलती थी। अब गंगा मुहाना पीछे हट गया है, सागर द्वीप के पास गंगा की एक छोटी धारा समुद्र से मिलती है। मकर संक्रान्ति पर पांच दिन मेला रहता है। तीन दिन स्नान होता है। कभी कपिल मुनि का मन्दिर था, अब कोई नहीं। कलकत्ते में मूर्ति रखी रहती है। मेले पर ले जाई जाती है। यहां पिण्ड दान, श्राद्ध भी होता है। समुद्र स्नान भी। कार्तिक पूर्णिमा पर भी लोग जाते हैं। भोजन अपने आप बनाना होता है, न बाजार, न दुकानें। भोजन का सामान साथ ले जाना होता है।

परशुराम कुण्ड—आसाम में हिमालय की पूर्वोत्तर सीमा पर पर्वत के पाद देश में परशुराम कुण्ड स्थित है। कहते हैं जब परशुराम ने मातृ-हत्या के मोक्षण के लिए अपने पिता जमदग्नि ऋषि से उपाय पूछा, कहा—ब्रह्म कुण्ड में जाकर स्नान करो—वहाँ परशुराम का पाप नष्ट हो गया। विश्व कल्याण के लिए पर्वत को फरसे से काटकर ब्रह्मकुण्ड का जल बाहर ले आये। वही ब्रह्म-पुत्र कहलाया। ब्रह्मपुत्र आता तो हिमालय के तिब्बती क्षेत्र से है जहाँ यह आसाम में प्रवेश करता है, वहीं परशु-राम कुण्ड था। पर्वतों में भूकम्प आने से धारा बदल गई। कुण्ड लुप्त हो गया। वहाँ की यात्रा बन्द हो गई। पहाड़ से उतर ब्रह्मपुत्र ने जिस स्थल पर पृथिवी का स्पर्श किया, उसी स्थान का नाम परशुराम-कुण्ड है।

पशुपति नाथ—काठमाण्डू (नेपाल) में है। पक्की सड़क है। लारियाँ-टैक्सियाँ मिलती हैं। दो मील पर पशुपति नाथ का मन्दिर है। काठमाण्डू नगर विष्णुमती और बागमती नदियों के संगम पर बसा है। तट पर मछन्दर नाथ का मन्दिर है। पशुपति नाथ की मूर्ति पारस की है, यह भ्रम है। पंचमुख शिवलिंग है।

मुक्तिनाथ—मुक्तिनाथ काठमाण्डू से १४० मील है। हवाई जहाज से आ सकते हैं। यहाँ आने के लिए गोरखपुर से भी मार्ग आता है। मुक्तिनाथ शालग्राम पर्वत का क्षेत्र है। अनेक रूप के शालग्राम मिलते हैं। मुक्तिनाथ के अन्दर गरम पानी के सात झरने हैं। अग्निकुण्ड के पास अग्नि-ज्वालायें दृष्टि में पड़ती है।